प्रस्तावना एंव सैद्धांतिक पृष्ठभूमि

भूमिका:

मानव सभ्यता के इतिहास पर गौर करने से साफ जाहीर होता है कि न्याय और अन्याय के बीच विभाजन की चादर बहुत झीनी है। न्याय, अन्याय का मापदंड सार्वकालीन नहीं है। यह अतीत में बदलता रहा है। जिसकी वजह से मानव व्यवहार का काफी बड़ा हिस्सा न्याय-अन्याय के बीच झूलता रहा है। मसलन, सदियों तक हमारा जीवन शास्त्रों द्वारा निर्देशित होता रहाऔर अब संविधान से संचालित होता है। शास्त्रों में न्याय की धारणा संविधान में निहित न्याय की धारणा से मूलत: भिन्न है। इसलिए कई बातें जो तब न्यायपूर्ण समझी जाती थीं, अब अन्याय मानी जाती हैं, और कई जो अब न्यायपूर्ण मानी जाती हैं, तब अन्याय समझी जाती थीं। न्याय की धारणा सार्वभौमिक भी नहीं है। बहुत अंश तक यह संस्कृति के सापेक्ष है (सिंह,2010)।

दुनिया में एक तबका हर समय में अपने आपको बाकी से अलग एवं उच्च दर्शाने के लिए अन्य तबकों को दबाता आ रहा है। इन दमितों में महिला, बच्चे, बूढ़े, अपाहिज, को प्राकृतिक रूप से भेद्यतापूर्ण (Vulnerable) के रूप में रेखांकित किया जाता है, और वर्गीय दमन में मालिक और गुलाम, गौरवर्णीय और कृष्णवर्णीय, सामंत और दास, आदि को देखा जाता है। हालांकि वैश्विक धरातल पर दमन प्रत्येक देश-काल में देखा जाता है, इसमें गुलामी प्रथा भी महत्त्वपूर्ण थी। परन्तु भारत के सन्दर्भ में यह बिल्कुल अलग है। क्योंकि भारत में दमन के महामारी की शुरुआत वर्ण व्यवस्था से शुरू होती है जिसे जाति व्यवस्था उसे और भी ज्यादा मजबूत बना देती है (Fanon,1954)। जाति व्यवस्था पर अपने विचार प्रस्तुत करते हुए डॉ॰ अंबेडकर कहते हैं कि जाति की बुनियाद पर आप जो कुछ भी बनाएँगे वह कभी स्थिर नहीं रह पाएगा नतीजतन टूटकर बिखर जाएगा(Ambedkar,58)। भारतीय समाज का सबसे दर्दनाक व घिनौना पहलू है वर्ण-व्यवस्था। जिसे धर्म व कानून का रूप देकर समाज में असमानता को वैधता देने वाली इस व्यवस्था को लागू किया। जन्म पर किसी मनुष्य का अधिकार नहीं है और न ही उसकी इच्छा। किसी व्यक्ति को यह नहीं पूछा जाता कि उसे किस वर्ग, समुदाय जाति में जन्म लेना है। उसे हिन्दू बनना है या मुसलमान, गोरा बनना

है या काला, ब्राह्मण बनना है या चमार- भंगी। लेकिन जिस समाज में वह पैदा होता है। उस समाज में मौजूद विचारों, संस्कारों, पूर्वाग्रहों, मान्यताओं, रिवाजों, विश्वासों का उसके व्यक्तित्व पर प्रभाव पडता है। यदि समाज में असमानता,अन्याय, उत्पीड़न को पोषित करने वाली संस्थाएं व मूल्य मौजूद हैं और किसी विशेष समुदाय, जाति या वर्ग में जन्म लेने मात्र से ही विषेशाधिकार मिल जाते हैं। दूसरों पर रौब-धौंस जमाने का लाईसेंस मिल जाता है व किसी दूसरे समुदाय में पैदा होने पर तमाम प्रकृतिक, मानवीय व नागरिक अधिकार छिन जाते हैं। समुदाय विशेष के लोगों को उन 'पापों-गुनाहों' की सजा मिलने लग जाती है जो वास्तव में उन्होंने किए ही नही और उस समुदाय को दबाए रखने के लिए हर स्तर पर इन्तजाम कर दिए जाएं तो ऐसी अमानवीय व्यवस्था के प्रति रोश-आक्रोश होना स्वाभाविक भी है और अवशयनभावी भी।(चंद्र,2006)।

समाज में वर्ग विशेष का एवं उसके कुछ ही लोगों का वर्चस्व बनाए- जमाए रखने एवं समाज के एक वर्ग को दूसररे वग्र पर अन्याय-उत्पीड़न व शोषण को औचित्य प्रदान करने तथा शोषण-अन्याय को सहन करने के हथियार के रूप मे काम करके जातिप्रथा ने भारतीय समाज को पिछडा, रूढिग्रस्त, समाज बना दिया, जिसका समाज के अधिकांश लोग आज भी अभिशाप भुगत रहे हैं। (चंद्र,2006)।

सिर्फ एक शतक पहले तक भारत में दलितों की स्थिति इतनी नारकीय थी कि दास और पशु उनके मुकाबले बेहतर थे। दास और पशु को उनके स्वामी छू सकते थे, पर दलितों को छूना तो दूर, सवर्ण हिंदू उनकी परछाई तक से अपवित्र हो जाते थे और स्नान के बाद ही शुद्ध होते थे। उन्हें न सार्वजनिक कुओं, तालावों से पानी लेने का अधिकार था और न विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करने कायहाँ तक कि मंदिर के दरवाजे भी उनके लिए पूर्णतया बंद थे। दलित इसे अपनी नियति समझ कर जी रहे थे। न उनमें स्थिति- बोध था और न अधिकार-बोध।(राजकिशोर,2004)।

वर्णव्यवस्था व जाति प्रथा में निहित छुआछूत की व्यवस्था ने समाज के लोगों में स्थायी भेद बना दिया, जब एक वर्ण-जाति के लोग दूसरे वर्णजाति के लोगों को छू भी नहीं सकते। एक वर्ण के छूने मात्र से

दूसरे वर्ण की कथित 'पवित्रता' भंग हो जाए और इस अपवित्रता व अशुद्धता से छुटकारा पाने के लिए 'स्नान' करना पडे तो ये विभिन्न वर्णो के लोग आपस में मिलने व एक होने की तो सोच भी नहीं सकते। छूआछूत की प्रथा ने वर्णो को अपने-अपने खोल मे रहने को मजबूर कर दिया। कथत 'सर्व' खोखली श्रेष्ठता के दंभ के कारण मानवीय गरिमा से गिरा रहा हो तो अवर्ण या शुद्र वर्ण को मानवीय पहचान ही नहीं मिली, इस समाज की मानवीयता को यह ब्राह्मणवादी व्यवस्था दीमक की तरह अन्दर ही अन्दर चाटती रही। सदियों तक पीढी-दर-पीढी छुआछुत की प्रथा चलती रही यद्यपि इसके खिलाफ आन्दोलन भी हुए, जिनके कारण समाज में छूआछूत व जाति की पकड भी ढीली हुई। लेकिन सत्तासीन शासक वर्गों के कितों-स्वार्थो को साधने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही है। और साधारण मेहनतकश जनता को संगठित होने से रोकती रही है, इसलिए मौका पाते ही छुआछूत व जाति की समाज पर पकड को मजबूत कर उभरती रही, इक्कीसवीं सदी में भी छूआछूत का भूत सिर चढकर बोल रहा है।(चंद्र,2006)।

उन्नीसवीं सदी के अन्त में और बीसवीं सदी के आरम्भ मे दलित चिन्तकों ने छुआछूत, वर्ण व्यवस्था व जाति के वैचारिक आधार पर प्रश्न चिन्ह लगाकर इसको कमजोर किया। स्वतंत्रता आन्दोलन के नेताओं ने भी इस प्रथा को मिटाने के वादे-घोषणाएं, संघर्ष भी किए जिसके परिणामस्वरूप जब भारत को आजादी प्राप्त हुई तो जाति व छुआछूत को अपराध की तरह माना गया। कानून व राज्य के सामने सबको बराबर लाने का संकल्प लिया, लेकिन इसके विरूद्ध कोई सामाजिक अभियान नहीं चलाए गए इसलिए ये आदर्श केवल संविधान के पन्नों और नेताओं के भाषणों को सजाने का ही हिस्सा बनकर रह गये। आजाद भारत के सत्तासीन नेता व चिन्तक यही मानते रहे कि आर्थिक विकास व शिक्षा के प्रसार- विस्तार के साथ-साथ जाति-प्रथा व छुआछूत जैसी गली-सडी परम्पराएं स्वतः ही समाप्त हो जाएंगी, लेकीन उनकी सोच सही साबित नहीं हुई।(चंद्र,2006)।

दलितों ने जब इस अत्याचार, व्यभिचार और शोषण का प्रतिकार करना शुरू किया तब उन्हें प्रतिक्रियावादी, नक्सलाइट कहा गया। बेलछी, वारा, डोहिया के कांड हुए। आज भी मध्य बिहार, और आन्ध्र प्रदेश के दलित अपनी इज्जत के लिए मर रहे हैं।(आर्य,2005)।

उन्नीसवीं सदी के दौर में लगभग पूरा भारतीय समाज अशिक्षा, गरीबी और पिछड़ेपन के दशा में जीवन व्यतीत कर रहा था। गांधी ने हरिजनों के उत्थान के लिए अनेक कार्य किए। जिनमें मुख्य निम्न हैं- 'हरिजन' साप्ताहिक का प्रकाशन, अस्पृश्यता निवारण हेतु जनजागरण के उद्देश्य से देशव्यापी भ्रमण, हरिजनों को मंदिर में प्रवेश व आँय आधिकार प्रदान किए जाने के लिए लोगों को प्रेरित करना, हरिजनों के कल्याण हेतु राष्ट्रीय कोष तथा हरिजन सेवक संघ की स्थापना, भंगी बस्तियों का भ्रमण एवं आश्रम में हरिजनों को प्रवेश देना आदि।

बिसवी दशक में डॉ. भीमराव अंबेडकर ने सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया। जिसके साथ ही भारत में दलित मुक्ति आंदोलन का पूरा परिदृश्य ही बदल गया। डॉ. भीमराव अंबेडकर के सार्वजनिक जीवन का सफरनामा बहुत ही संघर्षपूर्ण रहा। दलित समस्या के प्रति उनकी सोच सुधारवादियों से भिन्न थी। उनकी दृष्टि में दलितों की मुक्ति का प्रश्न मानव आधिकार की पुनर्स्थापना और सामाजिक अन्याय के विरुद्ध संघर्ष का प्रश्न है। उन्होंने दलित मुक्ति आंदोलन को लौकिक स्वरूप प्रदान किया (सिंह,2010)।

बीसवीं सदी के प्रारंभ में दलितों की जो दयनीय स्थिति थी उसमें दलित सुधारकों एवं सरकार के प्रयासों के फलस्वरूप क्रमश: सुधार हुआ। किंतु अभी भी समानता के दृष्टिकोण से दलितों की स्थिति संतोशजनक नहीं है। दलित समाज की स्थिति में गुणात्मक परिवर्तन स्पष्ट दिखाई नहीं पडता है। तथा सवर्णो की मानसिकता में बदलाव आना आवश्यक हैं साथ ही दलित-चेतना भी सकारात्मक दिशा में अग्रसर होनी चाहिए।(भारती,2011)।

आजदी के बाद अपनाई गई आर्थिक, सामाजिक नीतियों से हुए असमान विकास व पूर्वाग्रह पूर्ण शिक्षा ने जातिप्रथा को मजबूत किया। धीरे-धीरे जाति-प्रथा ने राजनैतिक ईकाई के तौर पर संगठित कर लिया। जाति-प्रथा व छुआछूत के विरूध्द सामाजिक अभियान न चलाने के कारण समाज में व्याप्त जातिगत दुराग्रह- पूर्वाग्रह ग्रस्त संस्कारों, विचारों, मान्यताओं, रिवाजों व कर्मकाण्डों ने सामाजिकव सार्वजनिक

जीवन को किस तरह प्रभावित किया है यह हमें हर रोज इस वर्ग के साथ हो रहे अत्याचार के रूप में दिखाई देता है। और इनके ऊपर यह दबाव बना हुआ हैं।(चंद्र,2006)।

ब्राह्मणवादी सोच में दलित के लिए सम्मान की कोई जगह नहीं है, परन्तु अब चूंकि लोकतांत्रिक शासन प्रणाली है, दलितों मे शिक्षा प्रसार से या आर्थिक स्थिति के बदलने से उनमें स्वाभिमान की भावना जगी हे। बदली परिस्थिति में दलित अपनी पुरानी सामाजिक स्थिति को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं, दूसरे और अपना दबदबा बनाए रखने के लिए वर्चस्ववादी शक्तियों का दर्प हिंसक रूप धारण कर लेता है। इसके लिए फिर बहाना चाहे गाय का ढूंढना पडे, चाहे मजदूरी बढ़वाने के लिए संघर्ष का हो। दलित व सवर्ण संघर्ष सिर्फ इस बात की सूचना नहीं देता कि दलितों पर अत्याचार हो रहे हैं या बढ रहे हैं बल्कि इसमें ये स्वर बिल्कुल स्पष्ट है कि अब दलित जिल्लत और अपमान का जीवन जीने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं हें चाहे उनको इसकी कुछ भी कीमत चुकानी पडे, कितनी ही मुसीबतें क्यों न उठानी पडे, चाहे घर बार छोड़कर उजडना भी क्यों न पड़े।(चंद्र,2006)।

मानव समाज में, या हर में कमोवेष, अमीर-गरीब, शोषक-शोषित, संचित-वंचित वर्ग पाये जाते हैं। आर्थिक संसाधन कुछा विशेष वर्गों में सिमट कर रह गये हैं, विशेष कर भारत में, जहाँ धार्मिक कट्टरता, सामाजिक, रूढिवादिता ने केवल शोषण करने में ही विश्वास किया है। छोटी मछली को बढ़ने का मौका नहीं दिया। शोषित, वंचित समाज को ऐसी परिस्थितियों में रखा गया कि वह जानता ही नहीं कि आत्माभिमान भी कोई चीज होती हे। उसके ज्ञान का पट सदैव के लिए बन्द कर दिया गया। स्वाधीनता, स्वाभिमान, सम्पन्नता आदि उसके दिमाग में घुसते ही नहीं। 'सा विद्या या विमुक्तये' से उसका कोई सरोकार नहीं है क्योकि''गरीबी, बीमारी और अपराध की व्यापकता के कारण सामाजिक मनुष्य का सबसे बडा काम जीवित और सुरक्षित रहना हो जाता है। केवल जीवित रहने के लिए जीवन संग्राम कराते रहना एक निकृष्ट स्थिति है।" हमारे देश में एक बहुत बड़ा समुदाय निकृष्ट स्थिति में रह रहा है।(आर्य,2005)।

दलितों का शोषण-उत्पीड़न और जाति का प्रश्न संविधान में संशोधन कर या आरक्षण और आर्थिक-राजनीति में लीपा-पोती कर दूर नहीं किया जा सकता। इसी तर्ज पर जो लोग राजनीति से दूर रहकर व्यवस्था और राजसत्ता से जाति-अंत का संघर्ष कर रहे हैं, वे कभी भी जाति-अंत नहीं कर पाएंगे। जाति-अंत और वर्गीय-अंत के लिए अलग-अलग विचारधारा पर काम करने वालों को यह ध्यान रखना चाहिए कि जातीय उत्पीड़न का वर्गीय पहलू भी है।(ढवले,2016)।

उत्पादन के साधनों में हिस्सेदारी का संघर्ष दलित आन्दोलन का मुख्य संघर्ष है। इसे सीधे-सीधे वर्ग-संघर्ष भी कहा जा सकता है। यह लड़ाई जिनके पास साधनों का स्वामित्व है और जिनके पास स्वामित्व नहीं है लेकिन वे अपने श्रम से उसमें भागीदारी करते हैं, उनके बीच का संघर्ष है। ध्यान देने की बात है कि जमीन तो दलितों के पास है नहीं, लेकिन खेती में अधिकतम काम दलित ही करते हैं। यही अन्तर्विरोध है जो दलित उत्पीड़न का और टकराहट का कारण बनता है। अपनी स्थिति को सुधारने के लिए दलित जहां बेहतर मजदूरी की बात करता है वहीं उनके शोषण से ऐश्वर्यपूर्ण जीवन बिताने के लिए भू-स्वामी वर्ग इसे बढने नहीं देता। वह अपनी हैसियत का तथा साधनों का लाभ उठाते हुए तरह-तरह के बंधन लगाता है। दलित की अभावग्रस्तता की स्थिति को अपने पक्ष में भुनाता है। उसके शोषण जारी रखने के लिए उसे सामाजिक दृष्टि से हीन बनाता हे। और बार-बार अनेक अवसरों पर उसके दिमाग में इस बात को बिठा देना चाहता है कि वह उससे हीन है। उसका शोषण करने के लिए ही उसके श्रम का अवमूल्यन करता है। इसके लिए धर्म का, कानून का, परम्परा का, बल का सभी हथकंडों का सहारा लेता है। भोतिक बल व विचारधारात्मक शक्ति का प्रयोग करता हे। दूसरी तरफ दलित अपनी स्थिति सुधारने के लिए असहयोग-सत्याग्रह संघर्ष- हडताल करता है। बराबरी व सम्मान की लड़ाई लड़ता है। यह वर्ग-संघर्ष ही है इस वर्ग संघर्ष में वर्गों की सामाजिक हैसियत उनकी आर्थिक स्थिति को व्याख्यायित करती है तो उनकी आर्थिक हैसियत उनकी सामाजिक स्थिति को। साधनों का स्वामित्व इसका मूल है। इसीलिए एक जाति किसी क्षेत्र में सामाजिक दृष्टि से बहुत ऊंची है, उनका राजनीतिक सत्ता पर भी दबदबा है क्योंकि उसके पास समस्त साधनों का स्वामित्व है, तो दूसरे क्षेत्र में वही जाति सामाजिक हैसियत से समाज के सर्वोच्च शिकार पर

नहीं है, बल्कि कई बार तो हालत इतनी पतली है कि वे अपने को पिछड़ा घोषित करने के लिए संघर्ष करते नजर आते हैं।(चंद्र,2006)।

दलितों की अधिकांश आबादी गांव में रहती है और खेती पर निर्भर है। दलितों के बहुत छोटे हिस्से के पास जमीन है, अधिकांश दलित खेतीहर मजदूर हैं। खेतीहर मजदूरों की स्थिति काफी कुछ खेती पर निर्भर करती है, वैश्वीकरण की नीतियों से खेती के स्वरूप में भारी बदलाव हुए हैं, व्यावसायिकता के दबाव के कारण किसान और मजदूर के संबंधों में बदलाव आया है, जिसने मजदूर की गरीबी को दरिद्रता में बदल दिया है। किसान कर्जे में डूबे है, कर्जे की अधिकता के कारण किसानों द्वारा आत्महत्याएं रोजमर्रा की बात हैं। खाद, बिजली व तेल आदि से सबसिडी कटौती व कीटनाशकों के आत्यधिक प्रयोग से खेती किसान के लिए घाटे का सौदा बनती जा रही है, जब किसान की यह हालत है तो उस पर निर्भर मजदूर की क्या हालत होगी इसका अनुमान लगाना कठिन काम नहीं है। खेती का अधिकतर काम मशिन से करने के कारण मजदूरों को बहुत कम दिन काम मिल पाता है। अनुमान के अनुसार केवल 60 से 70 दिन तक ही काम मिलता है, शेष दिनों में खाली जैसा है जिसके परिणामस्वरूप मजदूरों की मोलभाव की क्षमता कम हुई है और परिणामस्वरूप 15 से 20 रूपये में दिन भर के लिए काम करना पडता है।(चंद्र,2006)।

ग्रामीण समाज में जाति आधारित अन्तर बना हुआ हे। सोच में कमी आई है परन्तु व्यवहार में नहीं। यह एक विरोधाभास-सा लगता है परन्तु यह सच्चाई है। परिगणित जातियो और चाण्डालों में शिक्षा का प्रसार बढ रहा है। आर्थिक स्थिति में सुधार आ रहा है। शिक्षा एवं आर्थिक सुधार से तथाकथित ऊँची जाति के लोगों में ईर्ष्या –द्वेश बढ़ने लगा है। ऐसे अवसर की तलाश में रहते हैं कि अन्त्यज वर्ग के बच्चों की पढ़ाई ध्वंस हो जाये, सरकारी नौकरियों में आये लोगो को मुकदमों में फँसाकर नौकरी से निकालने की चाल आम शिकायत है। जहाँ उनकी चाल सफल नहीं होती है? वहाँ वे इस वर्ग के उच्च पदस्य अधिकारियों को अपनी ओर आकृष्ट करने का सफल प्रयास करते हैं। ऐसे उच्च पदस्थ अधिकारी अपने समाज से अलग हो जाते हैं। वे समझते है कि अब वे बडों की श्रेणी में आ गये हैं। वास्विकता यह है कि वेन इधर के होते हैं और न उधर के। त्रिषंकु।(आर्य,2005)।

विश्वविद्यालयों, स्कूल, विभिन्न सरकारी व गैर सरकारी संगठन और हर एक क्षेत्र में भी जातिव्यवस्था का प्रभाव एक बहुत बड़े पैमाने में दिखाई देता है वह चाहे प्रशासन में हो या फिर छात्रों के बारें में। अभी हालि में हेद्राबाद विश्वविद्यालय में रोहित वेमुला के साथ जिस तरह बर्ताव किया गया और इस बर्ताव के कारण उसकी ज़िंदगी छिन ली वो बर्ताव उसके जाने के बाद भी खत्म नहीं हुआ और न ही उसने रोहित की पीछा छोड़ा। रोहित के मामले में जो जांच समिति गठित हुई थी 'एक्सक्यूटिव काउन्सलिंग' की उप समिति में छह सदस्य थे। इस समिति ने तीन महीने के बाद उन पाँच विद्यार्थियों के लिए नई सजा का एलान किया। इन पांचों को हॉस्टल, क्लास, मेस, कैंटीन, विद्यापीठ के चुनाव और प्रशासन भवन में प्रवेश पर पाबंदी लगाई गई। मनुस्मृति में दलितों के लिए जो सजा थी, वह सब प्रतिकात्मक तौर पर इस सजा में भी था।(ढवले,2016)।

इस प्रकार जतियों व धर्मों के बीच विद्वेष और भेदभाव के बढ़ते समाज में छुआछूत की बीमारी पैदा हो गई जिसकी वजह से बीमार व संकटग्रस्त भारतीय समाज, जो छोटे-छोटे परस्पर संघर्षरत जाति, गुटों में बंटा हुआ हैं।

दलित कौन? समता पर आधारित बोद्ध धर्म के प्रति अपने अतिशय झुकाव के कारण जिन क्षत्रियों व निम्न जतियों के लोगों ने मौर्य साम्राज्य के पतन के उपरांत ब्राह्मणी वर्ण व्यवस्था को स्वीकार नहीं किया उन्हें ब्राह्मणों का कोप-भाजन बनना पड़ा। ब्राह्मणों ने जाति के बाहर विवाह करना बंद कर दिया और बोद्धों की देखा देखी को गो-मांस खाना छोड़ दिया। उनकी देखा देखी अन्यों ने भी ऐसा किया। जिन्होंने ऐसा नहीं किया ब्राह्मणों ने उन्हें अछूत करार कर दिया (अंबेडकर,1948) ।और इन्हीं अछूत को फिर दलित बना दिया। दलित का सामान्य अर्थ होता है, दबा या दबाया हुआ, कुचला हुआ। इसमें अभाव, कमजोरी, विपत्ति की नियति और हीनता का भाव झलकता है। दलित अर्थात् जो सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक रूप् से कमजोर हो, तभी तो उसे कुचला जा सकता है। आज भी कमजोर वही होता है, जिसके पास जीविकोपार्जन के साधन नहीं होते, अर्थात कृषि , उद्योग, व्यापार, नौकरी से वंचित। परन्तु इन अभावों के होते हुए भी यदि जाति, धर्म, वर्ण का बल है तो ऐसा व्यक्ति दलित नहीं होता। हमारे समाज में,

विशेष कर ग्रामीण समाज में यह सच्चाई क्रिया रूप् में विद्यमान है। एक गरीब एवं अभावग्रस्त ब्राह्मण समाज में सिर उठाकर चलता है और यह आशा करता है कि अवर्ण अमीर भी नतमस्तक होकर उसका अभिवादन करे और आशीर्वाद ग्रहण करे। यदि किसी अवर्ण या दलित ने ऐसे ब्राह्मण का सत्कार न किया तो वह धर्मग्रंथों की दुहाई देकर श्राप देने की धमकी देता है। इसीलिए डॉ. आंबेडकर ने भारतीय संविधान अनुसूचित जाति एवं जनजाति में ऐसे लोंगो की जातियों को परिगणित किया जो सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछडे थे। इन्हें ही दलित की संज्ञा दी जाती है।

'दलित शब्द अंग्रेजी भाषा के 'डिप्रेस्ड' के लिए प्रयुक्त होता है। सामाजिक तौर पर पिछडी या अस्पृश्य मानी जाने वाली जातियों में शायद आत्मसम्मान भरने और एकत्वसूत्र में अनुबंधित करने के उद्देश्य से, महात्मा गांधी ने 'अछूत' के बदले हरिजन का प्रयोग किया था। हरिजन अर्थात हरि या ईश्वर के जन।'(आर्य,2005)।

'दलित' शब्द का चलन 20वीं शताब्दी के दूसरे दशक में 1919 के मांटेग्यूचैम्सफोर्ट अधिनियम में पहली बार हुआ और1932 के पूना पैक्ट के बाद डॉ.भीमराव आंबेडकर ने अछूतों के लिए डिप्रेस्ड क्लास (अनुसूचितजाति और अनुसूचित जनजाति) शब्दका इस्तेमाल किया। वर्तमान में दलित शब्द प्रायःशूद्र, अतिशूद्र,चांडाल, मेहतर, आदिवासी आदि अछूत जातियों के लिए किया जाता है।(भारती,2011)।

कई जगहों पे अनुसूचित जनजाति समुदाय बाहुल्य है। फिर भी अल्पसंख्यकों द्वारा इन पर अत्याचार किये जाते है, अत्याचार अल्पसंख्यकों द्वारा बहुसंख्यकों पर किये जाते हैं, जबकि बहुसंख्यक समुदाय इनको सहन भी कर रहा है। सरकार द्वारा विकास कार्य किये जाने के बाद भी उत्पीड़न नहीं रुक पा रहा हैं। कानून में कोई कमी नहीं होती है। कमी और गुंजाइश होती है। लागू करने वाली संस्था में यदि इस कानून में कोई कमी है तो संशोधन किया जाना भी सम्भव होना चाहिए।(सिंह,2013)।

जातिव्यवस्था और साम्राज्यवाद के विरोध में विद्यार्थियों का एक बड़ा तबका 'विपक्ष'की भूमिका अदा कर रहा है।यह विद्यार्थियों का बसंत उत्सव है। लेकिन यह संघर्ष स्वयंस्फूर्त है। इसे किसी विचारधारात्मक, राजनीतिक या संगठनात्मक दिशा देने की जरूरत नहीं है।

विधान द्वारा शेक्षणिक संस्थाओं एवं सार्वजनिक सेवाओं में आरक्षण के जो विशेष प्रावधान सुनिश्चित किए गये हैं उन्हें लागू करने में नौकरशाही,विकृत प्रशासनिक ढांचा एवं नियमों की संकीर्ण व्याख्या अवरोध पैदा करते हैं।(ढवले,2016)।

"ऐसा प्रतोत होता है कि भारत में एक प्रतिक्रियात्मक क्रांति हो रही है। यह बात भूली जा रही है कि ये सभी लाभ कोई खेरात में नहीं दिये जा रहे हैं अपितु समाज का एक हिस्सा जो जनसंख्या के बढ़े भाग का प्रतिनिधित्व करता है.... को मानवाधिकार एवं सामाजिक न्याय के रूप में देय है। इस बात के भी संकेत मिल रहे है कि जिन लोगों को संविधान द्वारा ये विशेष प्रावधान देय घोषित कर रखे है उन्हें प्रदान करने में समाज का सुविधा भोगी वर्ग थकसा महसूस कर रहा है।"

-आर.के.नारायण, तात्कालीन राष्ट्रपति, भारत गणतंत्र

यहाँ कि जातिव्यवस्था कि कब्र खोदे बगैर सच्ची आज़ादी और समतामुलक समाज की स्थापना असंभव है और सच्ची आज़ादी के सिवाय राज्य के संविधान में उल्लेखित समता,स्वतंत्रता,भाई-चारा,धर्मनिरपेक्ष और न्याय जैसे मूल्यों का महत्व और अर्थ कुछ नहीं है। जाहीर है कि साम्राज्यवाद के दलालों के रहते जाति-व्यवस्था के अंत का ऐतिहासिक कार्य सिर्फ लीपा-पोती साबित होगा। पिछले70 सालों तथाकथित आज़ादी को देखकर इस बात को हम महसूस कर रहे हैं। जाति-व्यवस्था अंत का यह कारवा 'रैडिकल आंदोलन' के रास्ते ही साकार हो सकता है। इस कार्य के लिए एकता और संघर्ष कि राह पर बढ़ते हुए एक व्यापक सयुंक्त मौर्चा बनाने का समय आज हम सभी लोगों पर है। यही समय कि मांग है।(ढवले,2016)। स्वतंत्रता के पश्चात देश में विभिन्न कानूनों के तहत अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जंजातियों के लोगों को

सामाजिक संरक्षण प्रदान किया गया। परंतु शहरी क्षेत्र व ग्रामीण क्षेत्रों दोनों ही क्षेत्रों मे इस वर्ग के लोगों की गरिमा व सम्मान पर आघात हो रहा है।(मीना,2015)।

गौतम बुध्द ने रूढियों का विरोध किया। मानव कल्याण के लिए मानव मान्यताओं का प्रतिस्थापन किया, जिसके आधार पर आज चीन, जपान जैसे देश उन्नति के पथ पर अग्रसर हैं परन्तु ब्राह्मणवादी व्यवस्था ने बुध्द के रास्तों पर काँटे बो दिये। वह भारत में सार्थक स्थान नहीं बना पाये।महात्मा ज्योतिबाराव फूले का युग अन्धकार युग था। फूले ने अपनी ज्योति से दलितों के लिए रास्ता बनाया। शिक्षा के महत्व को समझाया, स्कूल खोले, स्वाभिमान को जगाया, इसके लिए यथावतवादी ब्राह्मण व्यवस्था ने उन्हें घर छोडने को मजबूर किया। पुनरपि उन्होंने संघर्ष जारी रखा। कबीर, रविदास, दादू, नानक ने रूढिविरोधी आव्हान को आगे बढाया। जात- पाँत का विरोध किया, परन्तु इनको भक्त एवं सन्त कहकर वाणी में दिग्भ्रमित किया गया।डॉ.आंबेडकर ने दलित समाज को आपने स्वाभिमान की सुरक्षा और अधिकार को पाने का पुख्ता आधार दिया।अवसर की गारंटी दी। अवसर को अपने हित में लगाना दलित का कर्तव्य है। भारतीय संविधान में आरक्षण का सिद्धान्त देकर बराबरी पर आने का अधिकार दिया। आरक्षण के विरोध में आज का द्विज समाज गोलबन्द हो रहा है। गत पचास वर्षों में 10 प्रतिशत आरक्षण भी नहीं हो सका है।(भारती,2011)।

दलित सिर्फ अपने बल पर जातिवाद से ज्यादा दूर तक नहीं लड सकता तथा अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने का उसका संघर्ष एक सीमा के बाद निरर्थक रक्तपात में बदल जाता है। एक तीसरा रास्ता राजनीतिक शक्ति हासिल करने का है। डॉ. आंबेडकर को इससे बहुत आशा थी। इसी आधार पर 1932 में पूना समझौता हुआ और बाद में चुनाव तथा सरकारी नौकरियों में आरक्षण का संवैधानिक प्रावधान किया गया। किंतु स्वतंत्र भारत के 47 वर्षों के प्रयोग से यह स्पष्ट है कि जब तक प्रभावशाली दलित राजनीति न हो, चुनाव में आरक्षण का लाभ भी गैर-दलित दलों को ही मिलता है। इसके विपरीत नौकरियों में आरक्षण दलितों की स्थिति में परिवर्तन का ज्यादा कारगर उपाय सिद्ध हुआ है। कांशीराम की राजनीतिक सफलता आश्चर्यजनक लग सकती है, किंतु उनकी शक्ति का रहस्य नौकरियों में आरक्षण ही है।(राजकिशोर,2004)।

गांधी और आंबेडकर की दलितोत्थान की पहल में बहुत अन्तर था। गांधी ने जहाँ अस्पृश्यों के लिए 'हरिजन' शब्द का प्रयोग किया और सवर्ण हिन्दुओं को स्वेच्छा से मौजूदा अस्पृश्यता को दूर करने, की बात की,वहीं आंबेडकर ने अछूत, अस्पृश्य और दलित जैसे जातिसूचक शब्दों को नकार दिया क्योंकि ये सब तिरस्कारसूचक शब्द हैं। समाज के पंचम वर्ण अस्पृश्य के लिए सम्मानसूचक शब्द की खोज समय-समय पर होती रही है। इसी सन्दर्भ में आचार्य किशोर कुणाल के ग्रन्थ 'दलित देवो भव' की भूमिका के ये अंश सार्थक लगते हैं।

''रामानुजाचार्य ने शुद्रों के लिए 'तिरूक्कुलन्तर' शब्द का प्रयोग किया था जिसका अर्थ है श्रेष्ट कुल का।" महात्मा गांधी के द्वारा 20 अक्टूबर 1932 को शंकर को प्रेशित पत्र से पता चलता है कि 'हरिजन' शब्द के बदले 'आदि हिन्दू' शब्द रखने का सुझाव दक्षिण के कतिपय दलित नेताओं से प्राप्त हुआ था। इसे विचित्र संयोग ही कहा जायेगा कि बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर ने 4 नवम्बर, 1931 को गोलमेज सम्मेलन में जो पूरक दावा पेश किया था उसमें उन्होंने अस्पृश्य को दलित (Depressed castes)कहे जाने पर आपत्ति प्रकट करते हुए उन्हें अवर्ण (नन कास्ट) हिन्दू, 'विद्रोही (प्रोटेस्टैंट) या अनास्थावान (नन कन्फार्मिस्ट) हिन्दू या इस प्रकार का कोई अन्यउपनाम रखने का सुझाव दिया था। बाद में असम के जनसंख्या अधीक्षक मूलन के सुझाव पर उन्होंने एक्सटीरियर कास्ट(Exterior castes) या एक्सक्लूडेड कास्ट (Excluded castes) रखने का सुझाव दिनांक 1 मई 1931 को भारतीय मतदान समिति के समक्ष दिया था।और जब उन्होंने भारतीय संविधान का निर्माण किया, तब उन्होंने उन्हें अनुसूचित जाति (Scheduled castes) के अन्तर्गत रखा।(भारती,2011)।

स्पष्ट है कि अकेले दलित राजनीति दलितो का भाग्य नहीं बदल सकती। कांशीराम जैसे नेता न हों; अच्छे, समझदार और क्रांतिकारी नेता हो; तब भी दलित राजनीति सिर्फ एक सशक्त विपक्ष की भूमिका अदा कर सकती है। मौदूदा राजनीतिक दलों के साथ गठबंधन और उनकी मदद से सत्ता में आने पर भी वह सिर्फ एक दबाव ग्रुप के रूप में काम कर सकती है, जब तक पूरी राजनीति का चरित्र नहीं बदलता। यह मानना धोखादेह है, जैसा कि किशन पटनायक ने अपने लेख में दिखाया है, दलितों, पिछडों और

मुसलमानों के मिल कर राजनीति करने पर स्वाभाविक रूप से क्रांतिकारी राजनीति का जन्म होगा।(राजकिशोर,2004)।

एक क्रांतिकारी माहौल सभी स्तरों पर बदलाव लाता है। लेकिन दलित अपनी सामाजिक स्थिति सुधारने के लिए क्रांति का इंतजार नहीं कर सकते। इसके लिए उन्हें तत्काल संघर्ष करना होगा। लेकिन यह संघर्ष सफल तभी होगा, जब सवर्णो में प्रायश्चित की प्रक्रिया शुरू हो। चूँकि संघर्ष और प्रायश्चित एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, अतः संघर्ष ऐसा होना चाहिए जो प्रायश्चित को संभव बना सके और प्रायश्चित ऐसा जो संघर्ष का सम्मान कर सके।(राजकिशोर,2004)।

दलित सिर्फ अपने बल पर जातिवाद से ज्यादा दूर तक नहीं लड सकता तथा अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने का उसका संघर्ष एक सीमा के बाद निरर्थक रक्तपात में बदल जाता है। एक तीसरा रास्ता राजनीतिक शक्ति हासिल करने का है। डॉ. आंबेडकर को इससे बहुत आशा थी। इसी आधार पर 1932 में पूना समझौता हुआ और बाद में चुनाव तथा सरकारी नौकरियों में आरक्षण का संवैधानिक प्रवधान किया गया। किंतु स्वतंत्र भारत के 47 वर्षों के प्रयोग से यह स्पष्ट है कि जब तक प्रभावशाली दलित राजनीति न हो, चुनाव में आरक्षण का लाभ भी गैर-दलित दलों को ही मिलता है। इसके विपरीत नौकरियों में आरक्षण दलितों की स्थिति में परिवर्तन का ज्यादा कारगर उपाय सिद्ध हुआ है। कांशीराम की राजनीतिक सफलता आश्चर्यजनक लग सकती है, किंतु उनकी शक्ति का रहस्य नौकरियों में आरक्षण ही है।(राजकिशोर,2004)।

बाबू जगजीवन राम ने दलित समाज को अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों का प्रतिकार करने का भी सुझाव दिया। उन्होंने कहा कि **‘‘अत्याचार किसी कानून से नहीं मिटेगा, अत्याचार करना भी पाप है, अत्याचार को बर्दाश्त करना उससे भी बडा पाप है। अत्याचार को रोकने के लिए स्वयं को खड़ा होना पड़ेगा क्योंकि आदमी की मुक्ति अपने हाथ में होती है। भगवान किसी को मुक्ति नहीं देता है। जो खुद नहीं उठाना चाहेगा उसको कोई नहीं उठा सकता है।”**

बाबू जगजीवन राम ने यह भी कहा कि **''सेकेंड वार ऑफ इनडिपेंडेंस (स्वतंत्रता की दूसरी लड़ाई)''**हिंदुस्तान में शुरू करनी होगी। एक बार स्वतंत्रता की लड़ाई में अग्रेंजों की गुलामी से छूटे। दूसरी स्वतंत्रता की लड़ाई अपने ही देश में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक शैक्षिक और निहित स्वार्थ से मुक्ति पाना है। हमें विद्रोह करना होगा तभी इस गुलामी से मुक्ति मिलेगी। आज इस देश की बेहूदी परंपरा है कि जो जितना ही ज्यादा उत्पादन करता है, वह उतना ही निकृष्ट है। उन्होंने देश की बढ़ती हुई आर्थिक असमानता जिसका सबसे ज्यादा शिकार दलित वर्ग ही था, ने देश एवं समाज के सामने संभावित खतरों के प्रति दलित समाज को आगाह किया। उन्होंने कहा कि''आज मुट्ठी भर लोग (5 प्रतिशत लोग) 95 प्रतिशत लोगों के भाग्य का फैसला करते हैं।'' उनका कहना था कि धीरज की भी एक सीमा होती है और जिसका धीरज टूटता है। वह यह नहीं सोचता कि जब हम बर्बाद करने चले हैं तो इसमें सिर्फ खराब ही चीज बर्बाद होगी या अच्छी, इसका ख्याल नहीं होतां मै देश के समझदार लोगों से वे अपील करते है, कि देश के करोडों ऐसे लोग, जिनके पास कुछ भी नहीं है, उनके धीरज का बांध मत टूटने देना। देश के अछूत आदि जाति कमजोर हैं लेकिन इस चीज को मत भूलो कि देश की दौलत पैदा करने के लिए वह अपने खून को पानी कर बहाना जानते हैं। जिस दिन उनका दृष्टिकोण बदला और उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि **दूसरों के लिए अपना खून पानी बनाकर बहाने के पहले, इस खून को हम अपने लिए बहाना सीखें**, न मालूम कितना खून भारत में बह जाएगा, इसका अंदाजा कर लें।(भारती,2011)।

डॉ.आंबेडकर के अथक प्रयासों के बाद दलितो में काफी हद तक सामाजिक,रानीतिक,आर्थिक, शैक्षणिक व सांस्कृतिक चेतना जागृत हुई। उन्हें हर प्रकार के संवैधानिक अधिकार भी मिल गए। किंतु वास्तविक जीवन में इसे व्यवहारिक रूपनहीं मिल पाया और समाज में अस्पृश्यता,जाति भेद-भाव,ऊंच-नीच की भावना पहले जैसी ही बनी रही। डॉ.आंबेडकर के बाद दलितों के नेता के रूप् में मात्र जगजीवन राम थे जिन्होंने दलित आंदोलन को आगे बढाने का काम किया।स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी दलित जातियां उच्च जातियों की गुलामी से मुक्त नहींहो पाई थीं।(भारती,2011)।

"चूँकि में आप लोगों से मिलने को इंकार नहीं कर सकता, इसलिए में यहाँ आया हूँ। बहुत्त समय पूर्व आपकी बस्तियों में जाने के पश्चात मुझे कितनी शर्मिंदगी महसूस हुई थी उसका उल्लेख करना मेरे लिए संम्भव नहीं है। वहाँ की दयनीय स्थिति देखकर मुझे बहुत धक्का लगा। मैंने महसूस किया कि इस देश कि आजादी के बाद भी आप लोग उसी प्रकार कष्ट पा रहे है जितना कि आजादी के पहले पा रहे थे। इन सब बातों से मुझे चिंता होती है, अत: मुझे आप लोगों के बीच आने में सकोंच हो रहा है।"

- पंडित जवाहरलाल नेहरू

जाति आर्थिक शोषण को बढ़ावा देकर अतिशोषण की और ले जाती है। इसी प्रकार जाति मुनाफे को और आधिक मुनाफे में तब्दील करती है। इसलिए जाति-अंत और वर्गीय-अंत कि लड़ाई, दोनों एक दुसरे के पूरक है। दोनों में ताल-मेल से ही इस संघर्ष को आगे ले जा सकते है। जबर्दस्त सामाजिक, संस्कृतिक, आर्थिक आंदोलन के सिवाय क्रांति संभव नहीं है। बगैर क्रांति के जाति उन्मूलन संभव नहीं।(ढवले,2016)।

'....एक आदमी की कीमत उसकी तात्कालिक पहचान और नजदीकी संभावना तक सीमित कर दी गई है। एक वोट तक। आदमी एक आकंडा बनकर रह गया है। एक वस्तु मात्र..... '

-रोहित वेमुला, उम्र 27 साल, पी-एच. डी.शोधार्थी

सामाजिक अन्याय की परिधि बड़ी व्यापक है उसमें वे सारे तरीके शामिल हैं जो जायज हक और आधिकार पर प्रतिबंध लगाते हैं और उनके पाने के मार्ग में बाधा खड़ी करते हैं। दुख की बात यह है कि बहुत से सामाजिक अन्याय छद्म रूप में अथवा अप्रत्यक्ष रूप से समाज में व्याप्त हैं, जिनका अस्तित्व जान-बूझकर भी नकारा जाता है। पूर्वाग्रह ग्रस्त एवं भेदभावपूर्ण अनेक ऐसे मामले आये दिन सामने आते हैं जिनमें व्यक्ति और समुदाय को उनकी सामाजिक पृष्टभूमि के आधार पर अनुचित तरीके से अवसरों से वंचित किया जाता है तथा कम योग्यता रखने वाले लोगों या समुदायों को लाभान्वित किया जाता है।(मीना,2015)।

किसी वर्ग के विकास व प्रगति के लिए ज्ञान निहायत जरूरी है, आज के युग में आधुनिकता और वैश्वीकरण में जबकि ज्ञान विकास की कुंजी बन चुका है तो किसी वर्ग को इससे दूर करने का अर्थ है उसको गुलाम बना लेना। शिक्षा के विशाल ढांचे में यद्यपि दलितों की हिस्सेदारी इतनी अधिक नहीं रही, लेकिन यह भी सच है कि दलितों में शिक्षा का जितना भी विस्तार हुआ है वह सार्वजनिक ढांचे से ही है। वैश्विकरण की नीतियों ने इसे तहस-नहस करने की कोशिश की है, जिसकी दलितों पर दोहरी मार पडी है। (चंद्र,2006)।

अंत: भारतीय जाति व्यवस्था, जो भारतीय समाज को लगा हुआ कोढ़ है। इसके निवारण के लिए फुले, शाहु, आंबेडकर, राममोहन राय, केशवचंद सेन, दयानंद सरस्वती, थियोसोफिकल सोसाइटी, एम. जी. रानाडे, गांधी, सावित्री बाई फुले, नारायण गुरु, आयंकाली, शाहु महाराज, बिरसा मुंडा, संत गाडगे, अछूतानंद, सयाजी गायकवाड, रामस्वामी नायकर, काशीराम आदि जैसे लोगों ने जीवनभर संघर्ष किया,नतीजन काफी बदलाव आए। स्वतन्त्रता के पहले फुले ने सामाजिक सुधारो के अंतर्गत और शाहु महाराज ने राजनैतिक आधार पर जाति निर्मूलन के आंदोलन को आगे बढ़ाया। इनके बाद अंबेडकर ने भारतीय संविधान में जाति निर्मूलन हेतु अधिनियम निर्धारित किए जिसमें देखते है कि अनुसूचित जाति और जनजाति के लिए संवैधानिक सुरक्षितता की बात की है। अनुच्छेद 17 के अंतर्गत अस्पृश्यता निवारण की बात रखी जिसमें यह कहा गया था कि "अस्पृश्यता खत्म की जा चुकी है और उसको किसी भी स्वरूप में आचरण में लाना निषिद्ध है। इसका किसी भी तरह का आचरण नियम के अनुसार गुनाह माना जाएगा।" बावजूद इसके दलितों के फ़रारी होने वाले अत्याचार लगातार बढ़ते जा रहें है। जाति प्रथा और छुआछूत संविधान ने समाप्त कर दी है। जन्म, धर्म, वर्ण आदि के नाम पक्षपात नहीं किया जा सकता है। फिर भी वेदकालीन समय से आज तक वर्ण और जाति का विकास ही हुआ है।

"अनुसूचित जतियों और अनुसूचित जनजातियों की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों को सुधारने के अनेक उपायों के बावजूद, वे कमजोर बनी हुई हैं। उन्हें बहुत से नागरिक आधिकारों से वंचित रखा गया है। उन्हें बहुत से अपराधों, तिरस्कारों, अपमानों और परेशानियों का शिकार बनाया जाता है। बहुत सी निर्मम

घटनाओं में उन्हें उनके जीवन और उनकी संपत्ति से वंचित किया गया है। विभिन्न ऐतिहासिक, सामाजिक और आर्थिक कारणों से उनके प्रति गंभीर अपराध किए जाते हैं। विशेष शिक्षा, आदि के जरिए अनुसूचित जतियों और अनुसूचित जनजातियों में उत्पन्न जागरूकता के कारण, जब वे अपने आधिकारों पर बल डालते हैं और उनके साथ किए जा रहे अस्पृश्यता के व्यवहारों का विरोध करते हैं अथवा न्यूनतम सांविधिक मजदूरी की मांग करते है अथवा बंधुआ मजदूरी अथवा बेगार में कम करने से इंकार करते हैं, तो निहित स्वार्थ उन्हें डराते-धमकाते हैं और आतंकित करते हैं। जब अनुसूचित जतियों और अनुसूचित जनजातियों के लोग अपने आत्म-सम्मान अथवा अपनी महिलाओं की मान-मर्यादा को बनाए रखने की कोशिश करते हैं, तो वे प्रभुत्व-प्राप्त और शक्तिशाली लोगों के लिए कांटे बन जाते हैं। अनु. जा. और अनु. ज. जा. के लोगों द्वारा सरकार द्वारा आवंटित भूमि का अधिभोग करने और वहां पर उनके द्वारा खेती किए जाने पर भी नाराजगी जाहीर की जाती है और अक्सर ये लोग निहित स्वार्थों के हमले के शिकार हो जाते हैं। अनुसूचित जतियों के लोगों को मल-मूत्र जैसी अखाद्य वस्तुएं खाने और पीने के लिए मजबूर करने और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के असहाय लोगों पर हमला करने और उनकी समूहिक हत्या करने तथा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की महिलाओं के साथ बलात्कार करने जैसे अत्याचारों की घटनाओं की चिंताजनक प्रवृति में वृद्धि हुई है। इन परस्थितियों में, नागरिक आधिकार संरक्षण आधिनियम, 1955 जैसे मोजूदा कानून और भारतीय दंड संहिता के सामान्य उपबंध अनु. जा. और अनु. ज. जा. के खिलाफ गैर-अनुसूचित जतियों और गैर-अनुसूचित जनजातियों के लोगों द्वारा किए जाने वाले अपराधों को रोकने और उनके निवारण के लिए अपर्याप्त पाए गए हैं।"(सिंह,2013)।

कानूनीप्रावधानों एवं सरकारी प्रयासों के परिणामस्वरूप दलित जतियों के प्रति अन्याय और अत्याचारों का स्वरूप अब यदपि पूर्व जैसा नहीं है लेकिन यह समझना कि अत्याचार निवारणार्थ किये गये प्रयास उत्साहवर्धक एवं आशाजनक रहे हैं एक भरी भूल होगी।

प्रत्येक समाज में पश्विक प्रवृतियों के फलस्वरूप या सामाजिक जातिगत भेदभाव के कारण सदैव ही मनुष्य अमानवीय व्यवहार करता रहा है।(मीना,2015)।

यह कितनी बड़ी विंडबना है कि जो दलित कुआं खोदता है, चिनाई करता है वही उस कुआं से पानी नहीं ले सकता। मंदिरों की ईटें दलितों ने बनाई उन्होंने हु मंदिर की चिनाई की, दलित शिल्पी ने मंदिर के भगवान/देवता की मूर्ति बनाई और उसको मंदिर में स्थापित किया। संपूर्ण मंदिर बन जाने के बाद तथाकथित ब्राह्मणों ने गंगा जल के छीटें मारकर मंदिर प्रवेश किया, लेकिन अब उसी दलित को मंदिर में प्रवेश करने से मन कर दिया गया। यह पांखड नहीं तो क्या है।(सिंह,2013)।

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 जो अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के खिलाफ अत्याचार को रोकने के लिए अधिनियमित किया गया था कि भारतीय न्यायपालिका के लिए एक नई दृष्टि में लाया जाए। केवल अपराध और दंड के साथ सदियों पुरानी भारतीय दंड संहिता से संबंधित है। लेकिन अधिनियम, न केवल अत्याचारों के लिए दंड के साथ संबंधित है। यह संरक्षण, कल्याण और अत्याचार के शिकार लोगों के पुनर्वास के लिए इसमें व्यापक उपायों का प्रावधान है। अधिनियम के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए सरकार ने राज्य स्तर से जिला स्तर के लिए अलग प्रशासनिक एजेंसियों का गठन किया है। वे सतर्कता एवं निगरानी समितियों, विशेष न्यायालयों की स्थापना कर रहे हैं, विशेष लोक अभियोजकों आदि सरकारी कर्मचारियों जिम्मेदार बना रहे हैं, अगर वे इस अधिनियम के तहत अपने सरकारी कर्तव्यों का पालन करने में विफल रहते है,सरकार के अधिकारियों अगर वे अपने कर्तव्यों को इस अधिनियम के तहत अपना काम करने में विफल होते है तो,इस अधिनियम के तहत वह दण्डात्मक सजा के लिए उत्तरदायी हैं। सरकार और अधिक विशेष रूप से केन्द्र सरकार अधिनियम के क्रियान्वयन के लिए वित्तीय संसाधनों का आवंटन कर रहे हैं। अधिनियम के प्रावधानों जो अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए बहुत आवश्यक है। में से कुछ से संशोधन करके 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 को एक प्रगतिशील अधिनियम बनाया हैं। लेकिन इसके बावजूद भी अत्याचार कम नहीं हुए।

सारणी क्र. 1.1 भारत में अट्रोसिटीज मामले

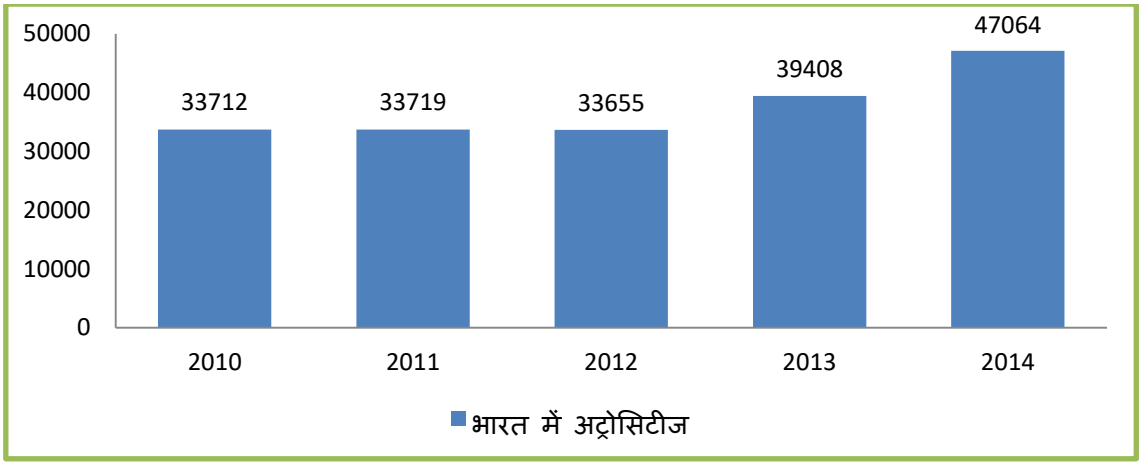

(Source- नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो, 2016)

नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो के अनुसार 2004 में शेडय़ूल्ड ट्राइब्स पर एट्रोसिटीज के मामले पांच हजार थे। 2005 में वह 5713,2006 में 5791, 2007 में वह 5532,2008 में 5582 और पिछले कुछ साल के आंकड़े बताते हैं कि दलितों के खिलाफ अत्याचार लगातार बढ़ रहे हैं। हालांकि 2012 में इसमें मामूली कमी आयी थी। साल 2014 में दलितों के खिलाफ 2013 के मुकाबले अधिक वृद्धि दिखायी गयी है। 2014 में 47,064 अपराध हुए हैं जबकि 2013 में यह आंकड़ा 39,408 था। साल 2012 में दलितों के खिलाफ अपराध के 33,655 मामले सामने आए थे, जबकि इसके एक साल पहले यानि 2011 में हुए 33,719 से थोड़े कम थे।2010 में यह आंकड़ा 33,712 था. अपराधों की गंभीरता को देखें तो इस दौरान हर दिन दो दलितों की हत्या हुई और हर दिन औसतन छह दलित महिलाएं बलात्कार की शिकार होती है।

आकृत्ति क्र. 1.2 महाराष्ट्र में अट्रोसिटीज मामले

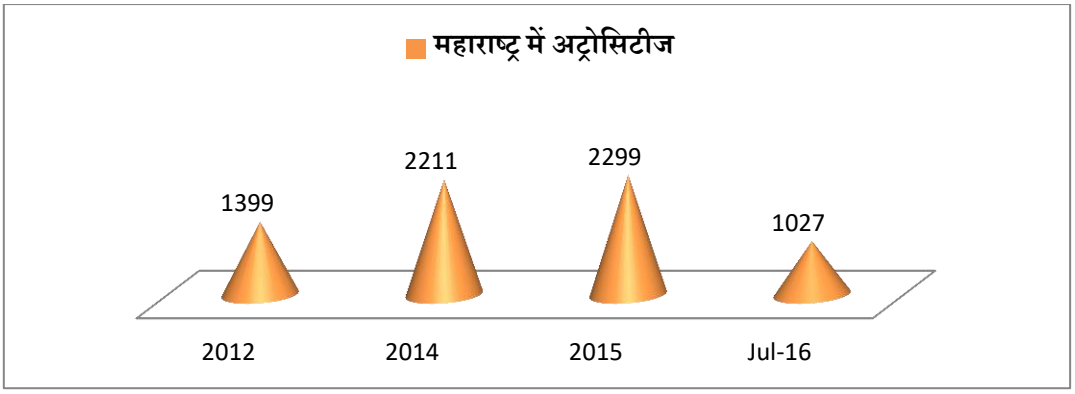

(Source-द टाइम्स ऑफ इंडिया,2016)

द टाइम्स ऑफ इंडिया की रिपोर्ट के अनुसार महाराष्ट्र में एट्रोसिटीज के आंकड़े 2012 में 1399, 2014 में 2211, 2015 में 2299 और 2016 जुलाई तक 1027 मामले सामने आयें हैं। इससे पता चलता है कि महाराष्ट्र भी आट्रोसिटीज मामलों में पीछे नहीं हैं। यहाँ पर भी हर साल यह अपराध बढ़ता जा रहा हैं।

भारत में दलितों के खिलाफ बढ़ती हिंसा के निवारण के लिए भारत सरकार द्वारा नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम,1955 फिर 1989 में एक नए अधिनियम को अधिनियमित किया। इसे अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम,1989 के रूप में भी जाना जाता है। देश के कमजोर तबकों, अनुसूचित जाति और जनजातियों के खिलाफ होने वाले शारीरिक, आर्थिक और मानसिक व भावनिक अत्याचार को रोक लगाने के लिए इस अधिनियम को देश में लागू किया। उसके बाद 1995 में इसमें संशोधन किया गया बावजूद इसके उन पर होने वाले अत्याचार में कोई कमी नहीं आयी और अब 2014-15 में फिर से इसमें संशोधन किया गया है। इतने संशोधनों के बावजूद स्थितियाँ लगभग अपरिवर्तित दिखती है।

यदपि अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति पर किये गये वीभत्स,दिल दहलाने वाले एवं अमानवीय और आशोभनीय अत्याचारों से संरक्षण हेतु भारत के संविधान में संपूर्ण एवं कारगर व्यवस्था की गई है। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम,1989तथा सिविल आधिकार संरक्षण अधिनियम,1955 में पृथक से सभी व्यवस्थाएं की गई हैं, लेकिन भारत को आझादी

मिल जाने के 69 वर्ष बाद भी उन कानूनों का प्रतिपालन नहीं होता है। यही कारण है कि अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति पर अत्याचार और उत्पीड़न प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलाता है और उनका मनोबल भी बढ़ जाता है।(सिंह,2013)।

यदपि यह बात बड़ी अटपटी और अजीब-सी लगाती है कि भारत की आजादी के बाद अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातीय समाज पर अत्याचार उत्पीड़न तथा शोषण की घटनाओं का ग्राफ बड़ी तीव्र गति से बढ़ रहा है। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति पर उत्पीड़न और अत्याचारों की घटनाओं में वृद्धि का कारण यह रहा है कि आजादी के बाद दलितों ने अपने आपको गुलाम नहीं समझा। उन्होंने यह मान लिया कि अब गुलामी के दिन चले गए और अब वह न अंग्रेजों के गुलाम रहे और न हिन्दुओं के. पहले वे दुहरी गुलामी झेल रहे थे। लेकिन यह बात सवर्णों को समझ में नहीं आ रही है. बाबा साहब डॉ. भीमराव आंबेडकर तथा ज्योतिबा फुले आदि द्वारा चलाये गए आंदोलन से उनके अन्दर और भी जागृति आयी। जैसे-जैसे दलितों के अन्दर जागृति आई और सरकार ने उन्हें सरक्षण देना शुरू किया,उनमें एक नए तरह का आत्मविश्वास को सवर्ण लोग बर्दाश्त नहीं कर पा रहे हैं और वे उनके विकास से द्वेष-भाव की भावना रखने लगे. जहाँ अवसर मिला, उन्होंने उनपर अत्याचार करने प्रारंभ कर दिए, चूँकि उनकी गुलामी करने वाला कोई नहीं रहा। इसलिए उन्होंने उन्हें पुन: गुलाम बनाये रखने के प्रयास में उन पर विभिन्न प्रकार के अत्याचार करने प्रारंभ कर दिए। वह दलितों से जबरन बेगार आदि कराने लगे। उन पर शोषण,उत्पीड़न,बलात्कार व अमानवी घटनाएँ घटने लगीं. इन घटनाओं का ब्यौरा प्रतिदिन समाचार पत्रों तथा टीवी चैनलों पर देखने को मिलाता है।

अत्याचार निवारण अधिनियम 1989 को 1995 में संशोधन करने के बाद भी आज गांव और कस्बों में असंख्य तरह के छुआछूत और भेदभाव के अपराध पाए जाते हैं। वर्तमान अधिनियम इनमें से कुछ को ही कवर करता है जैसे दलित आदिवासियों को उनके खेतों में घुसने से रोकना,उन्हें अपमानित करने नग्न परेड कराना अथवा उनके चेहरे पर या पुर शरीर पर पेंट लगाकर घुमाना, उन से जबरन गांव या घर खाली कराना उन्हें पानी लेने से रोकना या किसी इमारत में जाने से रोकना,उन्हें सार्वजनिक स्थान पर जाने से मन

करना,उनसे जबरन बंधुवा मजदूरी करवाना, अखाद्य पदार्थ खाने को बाध्य करना जैसे मल,पेशाब, कीचड़ आदी, उन्हें वोट डालने से रोकना, दलित और आदिवासियों के आंगन में मल या कूड़ा डालना, गलत मुकदमा या गलत सूचना देना शारीरिक हमला करके उन्हें चोट पहुंचाना,उनके घर या मंदिरों को जलाना,दलित और आदिवासी महिलाओं का यौन उत्पीड़न करना हालाँकि इनके अलावा भी भेदभाव और अत्याचारों के अन्य अनेक रूप है जो कि इस अधिनियम में नहीं है जैसे कि शिक्षा संस्थानों में भेदभाव या मिड डे मील स्कीम में भेदभाव। सार्वजनिक सेवाओं या सामान तक पहुंच में भेदभाव,रोजगार में भेदभाव,श्रम संगठनों में भेदभाव,कॉर्पोरेट और प्राइवेट सेक्टर में भेदभाव आदि इसके अलावा अनसामान्य अपराध जैसे चोट, हमला, बलात्कार, अपहरण एवं अन्य अपराध आईपीसी में 7 से 10 साल तक की सजा के अंतर्गत, इस अधिनियम के दायरे में नहीं आते हैं।(सिंह,2013)।

पृष्ठभूमि:

अनुचूचित जातियों के संरक्षण के लिए भारतीय संविधान के निर्माताओं ने संविधान में विशेष प्रावधान करने का निश्चय किया। संविधान निर्माताओं के विचारों के अनुरूप सामाजिक न्याय के लक्ष्य को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से संवैधानिक प्रावधानों के साथ - साथ कुछ विशेष कानूनी उपाय भी किये हैं। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में राजनीति और आर्थिक न्याय के साथ-साथ सामाजिक न्याय का जो आदर्श प्रतिपादित किया गया है, उससे ही ये प्रावधान और कानून प्रेरणा ग्रहण करते हैं।

संविधान का अनुच्छेद 14 सभी व्यक्तियों को कानून के सामने समानता और कानून की समान सुरक्षा की गारंटी देता है। इसी अधिकार का थोडे विस्तार से अनुच्छेद 15 (1) में उल्लेख किया गया है,

जिसमें राज्य को अन्य बातों के साथ-साथ जाति के आधार पर किसी नागरिक के साथ भेदभाव करने से रोका गया है। लेकिन अनुच्छेद 15 (4) में राज्य को अन्य बातों के साथ अनुसूचित जातियों के लिए विशेष प्रावधान करने की अनुमति दी गयी है। यह संरक्षणात्मक भेदभाव का एक उदाहरण है। अनुच्छेद 15 (2) में कहा गया है कि अन्य बातों के साथ-साथ किसी भी नागरिक को केवल जाति के आधार पर अक्षमता या

किसी दायित्व का पात्र नहीं ठहराया जायेगा। केवल इसी आधार पर दुकानों, रेस्त्राँओं, होटलों और सार्वजनिक मनोरंजन के स्थलों पर प्रवेश या कुएँ आदि के इस्तेमाल पर कोई रोक या शर्त नहीं लगायी जायेगी। साथ ही ऐसी सडकों और सार्वजनिक आवाजाही के ऐसे स्थलों, जिनका रखरखाव पूरे या आंशिक रूप में राज्य कोशसे किया जाता है या जिन्हें जन उपयोग के लिए समर्पित किया गया हो, के इस्तेमाल पर भी अन्य चीजों के साथ-साथ केवल जाति के आधार पर रोक नहीं लगायी जायेगी।

एक अन्य संदर्भ में भी संरक्षणात्मक भेदभाव की जरूरत महसूस की गयी। संविधान का अनुच्छेद 29 (2) कहता है कि सरकार द्वारा चलाये जा रहे या सहायता प्राप्त शैक्षणिक संस्थानों में किसी भी नागरिक को केवल जाति के आधार पर प्रवेश देने से मना नहीं किया जा सकेगा। पर अनुच्छेद 15 (4) इस आम निषेध का अपवाद प्रस्तुत करता है, जिसमें अनुसूचित जातियों के लिए राज्य को विशेष प्रावधान करने की अनुमति दी गयी है।

सरकारी नौकरियों के सिलसिले में जहाँ अनुच्छेद 16 (1) और 16 (2) अन्य बातों के अलावा केवल जाति के आधार पर भेदभाव करने पर रोक लगाते हैं, वहीं अनुच्छेद 16 (4) राज्य को अन्य चीजों के अतिरिक्त किसी भी 'ऐसे पिछडे वर्ग के नागरिकों के लिए नियुक्तियों या पदों में आरक्षण की अनुमति देता है जिनका राज्य की दृष्टि में सरकारी सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है।' हालाँकि अनुसूचित जातियों का इसमें अलग से उल्लेख नहीं है लेकिन उच्चतम न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि वे एक पिछडे वर्ग के रूप में माने जायेंगे (जानकी प्रसाद बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य, ए. आइ. आर.1973, सु. को 930, 937)। इसी आधार पर आरक्षण के निर्धारित कोटे के तहत उनके पक्ष में पदों का आरक्षण और सेवा शर्तो में छूट तथा अन्य चीजें बहाल रखी गयी हैं। (ए. बी. एस. के संघ बनाम भारत सरकार, ए. आइ. आर.1981,सु. को. 29 ऊपर वर्णित मौलिक अधिकारों और उनमें परिवर्तन के अतिरिक्त संविधान में राज्य के नीति निदेशक सिद्धांतो का एक अध्याय है। अनुच्छेद 37 में कहा गया कि 'इन प्रावधानों को किसी अदालत के जरिये लागू नहीं करवाया जा सकेगा, लेकिन यहाँ उल्लिखित सिद्धांत देश के शासन का आधार है और यह राज्य का कर्तव्य है कि वह कानून बनाने में इन सिद्धांतो को अमल में लाये। राज्य के

नीति निर्देशक सिद्धांतो में से एक, अनुच्छेद 46 अनुसूचित जातियो के लिए प्रासंगिक है। इसमें कहा गया है कि 'राज्य जनता के कमजोर तबकों और विशेष तौर पर अनुसूचित जातियों और जनजातियों के शैक्षणिक और आर्थिक हितों को विशेष ध्यान देते हुए प्रोत्साहित करेगा और सामाजिक अन्याय तथा शोषण के सभी दूसरे प्रकारों से उनकी रक्षा करेगा। संविधान में अनुसूचित जातियों से संबंधित लक्ष्यों के कार्यान्वयन की समीक्षा के लिए विशेष प्रावधान भी किये गये हैं। किसी जाति को अनुसूचित जाति घोषित करने का कार्य अनुच्छेद 341 (1) के अंतर्गत राष्ट्रपति करता है और इससे संबंधित दूसरे प्रावधान अनुच्छेद 341 (2) के तहत संसदीय कानून बना कर किया जाता है। भारत के राष्ट्रपति ने अनुच्छेद 341 (1) के अंतर्गत संविधान(अनुसूचित जाति) आदेश, 1950 जारी किया, जिसमें तदनुसार संसदीय कानूनों के जरिये संशोधनकिया जाता रहा है। उच्चतम न्यायालय ने एक फैसले में कहा किअदालतें राष्ट्रपति की अधिसूचना के परे नहीं जा सकतीं (परसराम बनाम शिवचंद, ए. आइ. आर. 169 , सु. को. 550) अनुच्छेद 338, जिसमें 1990 में 65 वाँ संशोधन किया गया, के तहत अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए राष्ट्रीय स्तर पर एक आयोग बनाया गया है। मंडल आयोग से संबंधित फैसले में इस आयोग के कार्यो का हवाला दिया गया है (इंदिरा साहनी बनाम भारत सरकार (1992), पूरक (3), अ. जा. आ. 217) संविधान के अनुच्छेद335 में कहा गया है कि संघ या राज्य के मामलों से संबंधित सेवाओं और पदों के लिए नियुक्ति करते वक्त अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के दावों पर विचार 'प्रशासन की कार्यकुशलता के निर्वाह के अनुरूप' किया जाना चाहिए।

मौलिक अधिकारों से संबंधित अनुच्छेद 17 अस्पृश्यता को खत्म कर किसी भी रूप में इसके व्यवहार पर रोक लगाता है। इसमें यह भी प्रावधान है कि अस्पृश्यता के परिणामस्वरूप किसी अक्षमता पर अमल कानून के मुताबिक दंडनिय अपराध होगा। अनुच्छेद 35 (ए) संसद को मौलिक अधिकारों से जुडे संवैधानिक प्रावधानों के तहत अपराध करार दिये कृत्यों के लिए ऐसे कानून बनाने का पूरा अधिकार देता है, जिनमें दंड निर्धारित किये गये हों।

1955 में संसद ने अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम बनाया। 1976 में उसी वर्ष के अधिनियम 106 के जरिये इस कानून का नाम बदल कर नागरिक अधिकार सुरक्षा कानून, 1955 कर दिया गया। इस कानून की धारा 3 और 4 के तहत अस्पृश्यता के आधार पर किसी व्यक्ति को धार्मिक या सामाजिक रूप से अयोग्य करार देने के लिए दंड का प्रावधान किया गया है। विशेष रूप से किसी सार्वजनिक धार्मिक स्थल में अगर किसी व्यक्ति को प्रवेश से रोका जाता है जबकि वहाँ उसी धर्म को माननेवाले दूसरे व्यक्तियों को जाने की इजाजत होती है, तो व्यक्ति विशेष के प्रवेश पर रोक दंडनीय होगी। धारा 5 में आम जनता या उसके किसी भी वर्ग के लाभ के लिए चलाये जा रहे संस्थानों-मसलन अस्पताल, शिक्षण संस्थान आदि में अगर अस्पृश्यता के आधार पर किसी व्यक्ति को दाखिला देने से मना किया जाता है, तो यह कृत्य दंडनीय होगा। इसी तरह धारा 6 में अस्पृश्यता के आधार पर किसी व्यक्ति को वस्तु बेचने से मना करने या उसे सेवा मुहैया न करना भी दंडनीय होगा। धारा 7 में व्यवस्था की गयी है कि अस्पृश्यता को समाप्त करनेवाले संवैधानिक अनुच्छेद 17 के तहत मिलनेवाले अधिकारों के प्रयोग से अगर किसी को वंचित किया जाता है, तो यह दंडनीय अपराध होगा। इसी धारा में संविधान के अनुच्छेद 17 के तहत प्रदत्त अधिकारों के प्रयोग की वजह से किसी व्यक्ति को सताने, बाधा पहुँचाने या बहिश्कृत करने या अस्पृश्यता के पालन के लिए दूसरों को उकसाने अथवा अस्पृश्यता के आधार पर अनुसूचित जाति के किसी सदस्य का अपमान करने को अपराध माना गया है। धारा 7 (ए) के तहत अस्पृश्यता के आधार पर किसी व्यक्ति को गैरकानूनी ढंग से मजदूरी करने के लिए विवश करना दंडनीय है। धारा 10 (ए) के जरिये राज्य विशेष मामलों में कानून का उल्लंघन न करने के लिए सामूहिक जुर्माना कर सकती है। इस अधिनियम की धारा 15 में इन अपराधों को संज्ञेय घोषित किया गया है। धारा 15 (ए) में राज्य सरकार से कहा गया है कि वह जरूरी उपाय कर यह सुनिश्चित करे कि अस्पृश्यता के आधार पर अयोग्यता के पात्र बनाये गये व्यक्ति इन अधिकारों का उपयोग कर सकें। धारा 16 (ए) इस कानून के तहत दोषी करार दिये गये 14 साल से ज्यादा उम्र के व्यक्ति की परिवीक्षोत्तर रिहाई की मनाही करती हे। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोध) कानून का मकसद अनुसूचित जातियों और जनजातियों के सदस्यों पर अत्याचार होने से रोकना है। इस कानून के

तहत विशेष अदालतों के गठन का प्रावधान है, जिसमें अपराध करनेवालों के खिलाफ मुकदमा चलाने और ऐसे अपराधों के शिकार हुए व्यक्तियों की राहत और पुनर्वास की व्यवस्था है। धारा 3 में ऐसे अपराधो का विस्तृत उल्लेख किया गया है। धारा 4 के अंतर्गत इस कानून के तहत निर्वाह किये जानेवाले दायित्व की अगर कोई सरकारी सेवक जानबूझ कर उपेक्षा करने का दोषी पाया जाता है, तो वह दंड का भागी होगा। विशेष अदालत के आदेश के तहत धारा 7 में दोषी व्यक्तियों की संपत्ति जब्त कर लेने का प्रावधान है। धारा 10 के अनुसार, विशेष अदालत किसी व्यक्ति द्वारा इस कानून के तहत निर्धारित अपराध करने की आंशका के मद्देनजर उसे स्थान विशेष से हटाने का आदेश दे सकती है। धारा 16 राज्य सरकार को सामूहिक जर्माना लगाने का अधिकार देती है। इस कानून के तहत ऐसे मामलों में अग्रिम जमानत की मनाही है, जिसमें किसी व्यक्ति पर अपराध करने का अभियोग लगाया गया हो और उसकी गिरफ्तारी संभावित हो। धारा 19 इस कानून के तहत दोषी करार दिये गये 18 साल से ज्यादा उम्र के व्यक्ति की परिवीक्षोत्तर रिहाई की मनाही करती है।

अस्पृश्यता कि विभिन्न प्रथाओं को अपराध निर्धारित किए जाने के बावजूद, नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम 1955, विशेष रूप से अपेक्षाओं को पूरा नहीं कर पाया है। इसमें बहुत सी कमियाँ अर्थात बचाव के रास्ते थे, दंडों के स्तर भारतीय दंड संहिता कि तुलना में कम कड़े थे और कानून तथा व्यवस्था तंत्र के लोग न तो व्यावसायिक प्रशिक्षण-प्राप्त थे और न ही उनमें ऐसे सामाजिक कानून की भावना को अमली रूप देने की प्रवृति थी। इन्हीं मुख्य कारणों से, अनु. जा./अनु. ज. जा. के सदस्यों को अत्याचारों से बचाने के लिए और उन पर होने वाले अत्याचारों के निवारण के अनु. जा. और अनु. ज. जा. (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 जैसा अधिनियम बनाया जाना जरूरी था। इस आधिक व्यापक और कड़े दंडों वाले विधान के बुनियादी उद्देश्य और प्रयोजन को उद्देश्यों के विवरण में स्पष्ट किया गया हैं। इस कारण अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम,1989 में बन गया और30जनवरी1990सेअनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम,1989 लागू कर दिया गया।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 17 के अंतर्गत अस्पृश्यता की प्रथा के उन्मूलन के कार्य के भाग के रूप में, भारत सरकार ने भारतीय समाज के सर्वाधिक वंचित समुदायों के साथ समानता के व्यवहार और न्याय के प्रति वचनबध्द कानून के रूप में दो विशेष और सामाजिक रूप से अर्थपूर्ण अधिनियम बनाए थे, अर्थात नागरिक आधिकारों का संरक्षण (पी.सी.आर.) अधिनियम, 1955 और उसके पच्चीस वर्ष बाद अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989। इन दोनों अधिनियमों के दोहरे उद्देश्य थे, सारे दलितों के साथ भेदभाव की प्रथाओं के उन्मूलन के लिए, जो जाति व्यवस्था की युगों से चली आ रही परंपरा से जुड़ी थीं, अस्पृश्यता की समाप्ती और अनु. जा./अनु. ज. जा. समुदायों के सदस्यों का सशक्तिकरण। चूंकि इस विषय के बारे में किसी केंद्रीय कानून का वजूद नहीं था, इसलिए अस्पृश्यता को समाप्त करने वाले संविधान के अनुच्छेद 17 के उपबंधों के अनुक्रम में, संसद द्वारा एक कानून बनाया जाना था, जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 35 के खंड (क) के उप-खंड (2) के अंतर्गत जरूरी था।

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989

परिचय :

यह कानून एस.सी., एस.टी. वर्ग के सम्मान, स्वाभिमान, उत्थान एवं उनके हितों की रक्षा के लिए भारतीय संविधान में किये गये विभिन्न प्रावधानों के अलावा इन जातीयों के लोगों पर होने वालें अत्याचार को रोकनें के लिए 16 अगस्त 1989 को उपर्युक्त अधिनियम लागू किये गये। वास्तव में अछूत के रूप में दलित वर्ग का अस्तित्व समाज रचना की चरम विकृति का द्योतक हैं।भारत सरकार ने दलितों पर होने वालें विभिन्न प्रकार के अत्याचारों को रोकनें के लिए भारतीय संविधान की अनुच्छेद 17 के आलोक में यह विधान पारित किया। इस अधिनियम में छुआछूत संबंधी अपराधों के विरूद्ध दण्ड में वृद्धि की गई हैं तथा दलितों पर अत्याचार के विरूद्ध कठोर दंड का प्रावधान किया गया हैं। इस अधिनिमय के अन्तर्गत आने वालें अपराध संज्ञेय, गैरजमानती और असुलहनीय होते हैं। यह अधिनियम 30 जनवरी 1990 से भारत में

लागू हो गया।यह अधिनियम उस व्यक्ति पर लागू होता हैं जो अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं हैं और इस वर्ग के सदस्यों पर अत्याचार का अपराध करता है। अधिनियम की धारा 3 (1) के अनुसार जो कोई भी यदि वह अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति का सदस्य नही हैं और इस वर्ग के सदस्यों पर निम्नलिखित अत्याचार का अपराध करता है तो कानून वह दण्डनीय अपराध माना जायेगा-

1. अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के सदस्यों को जबरन अखाद्य या घृणाजनक (मल मूत्र इत्यादि) पदार्थ खिलाना या पिलाना।

2. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को शारीरिक चोट पहुंचाना या उनके घर के आस-पास या परिवार में उन्हें अपमानित करने या क्षुब्ध करने की नीयत से कूड़ा-करकट, मल या मृत पशु का शव फेंक देना।

3. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य के शरीर से बलपूर्वक कपड़ा उतारना या उसे नंगा करके या उसके चेहरें पर पेंट पोत कर सार्वजनिक रूप में घुमाना या इसी प्रकार का कोई ऐसा कार्य करना जो मानव के सम्मान के विरूद्ध हो।

4. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य के आबंटित भूमि पर से गैर कानूनी-ढंग से खेती काट लेना, खेती जोत लेना या उस भूमि पर कब्जा कर लेना।

5. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को गैर कानूनी-ढंग से उनकें भूमि से बेदखल कर देना (कब्जा कर लेना) या उनके अधिकार क्षेत्र की सम्पत्ति के उपभोग में हस्तक्षेप करना।

6. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के सदस्य को भीख मांगनें के लिए मजबूर करना या उन्हें बुंधुआ मजदूर के रूप में रहने को विवश करना या फुसलाना।

7. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के सदस्य को वोट (मतदान) नहीं देने देना या किसी खास उम्मीदवार को मतदान के लियें मजबूर करना।

8. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य के विरूद्ध झूठा, परेशान करने की नीयत से इसे पूर्ण अपराधिक या अन्य कानूनी आरोप लगा कर फंसाना या कारवाई करना।

9. किसी लोक सेवक (सरकारी कर्मचारी/ अधिकारी) को कोई झूठा या तुच्छ सूचना अथवा जानकारी देना और उसके विरूद्ध अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को क्षति पहुंचाने या क्षुब्ध करने के लियें ऐसें लोक सेवक उसकी विधि पूर्ण शक्ति का प्रयोग करना।

10. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को जानबूझकर जनता की नजर में जलील कर अपमानित करना, डराना।

11. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के किसी महिला सदस्य को अनादार करना या उन्हें अपमानित करने की नीयत से शील भंग करने के लिए बल का प्रयोग करना।

12. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के किसी महिला का उसके इच्छा के विरूद्ध या बलपूर्वक यौन शोषण करना।

13. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के सदस्यों द्वारा उपयोग में लायें जाने वालें जलाशय या जल स्त्रोतों का गंदा कर देना अथवा अनुपयोगी बना देना।

14. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के सदस्यों को किसी सार्वजनिक स्थानों पर जाने से रोकना, रूढ़ीजन्य अधिकारों से वंचित करना या ऐसे स्थान पर जानें से रोकना जहां वह जा सकता हैं।

15. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को अपना मकान अथवा निवास स्थान छोड़नें पर मजबूर करना या करवाना।

दण्ड :

ऊपर वर्णित अत्याचार के अपराधों के लियें दोषी व्यक्ति को छः माह से पाँच साल तक की सजा, अर्थदण्ड (फाइन) के साथ प्रावधान हैं। क्रूरतापूर्ण हत्या के अपराध के लिए मृत्युदण्ड की सजा हैं। अधिनियम की धारा 3 (2) के अनुसार कोई भी व्यक्ति जो अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं हैं और-

•यदि वह अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य के खिलाफ झूठा गवाही देता है या गढ़ता हैं जिसका आशय किसी ऐसे अपराध में फँसाना हैं जिसकी सजा मृत्युदंड या आजीवन कारावास जुर्मानें सहित है। और इस झूठें गढ़ें हुयें गवाही के कारण अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के सदस्य को फाँसी की सजा दी जाती हैं तो ऐसी झूठी गवाही देने वालें मृत्युदंड के भागी होंगें।

•यदि वह मिथ्या साक्ष्य के आधार पर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को किसी ऐसे अपराध के लियें दोष सिद्ध कराता हैं जिसमें सजा सात वर्ष या उससें अधिक है तो वह जुर्माना सहित सात वर्ष की सजा से दण्डनीय होगा।

•आग अथवा किसी विस्फोटक पदार्थ द्वारा किसी ऐसे मकान को नष्ट करता हैं जो अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य द्वारा साधारणतः पूजा के स्थान के रूप में या मानव आवास के स्थान के रूप में या सम्पत्ति की अभिरक्षा के लिए किसी स्थान के रूप में उपयोग किया जाता हैं, वह आजीवन कारावास के साथ जुर्मानें से दण्डनीय होगा।

•लोक सेवक होत हुयें इस धारा के अधीन कोई अपराध करेगा, वह एक वर्ष से लेकर इस अपराध के लिए उपबन्धित दण्ड से दण्डनीय होगा। अधिनियम की धारा 4 (कर्तव्यों की उपेक्षा के दंड) के अनुसार कोई भी सरकारी कर्मचारी/अधिकारी जो अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति का सदस्य नही हैं, अगर वह जानबूझ कर इस अधिनियम के पालन करनें में लापरवाही करता हैं तो वह दण्ड का भागी होता। उसे छः माह से एक साल तक की सजा दी जा सकती हैं।

अन्य प्रावधान:

धारा-14 (विशेष न्यायालय की व्यवस्था) के अन्तर्गत इस अधिनियम के तहत चल रहे मामले को तेजी से ट्रायल (विचारण) के लियें विशेष न्यायालय की स्थापना का प्रावधान किया गया है। इससे फैसलें में विलम्ब नहीं होता हैं और पीड़ित को जल्द ही न्याय मिल जाता हैं। धारा-15 के अनुसार इस अधिनियम के अधीन विशेष न्यायालय में चल रहें मामलें को तेजी से संचालन के लिये एक अनुभवी लोक अभियोजक (सरकारी वकील) नियुक्त करने का प्रावधान हैं। धारा-17 के तहत इस अधिनियम के अधीन मामलें से संबंधित जाँच पड़ताल डी.एस.पी. स्तर का ही कोई अधिकारी करेगा। कार्यवाही करने के लियें पर्याप्त आधार होने पर वह उस क्षेत्र को अत्याचार ग्रस्त घोषित कर सकेगा तथा शांति और सदाचार बनायें रखने के लिए सभी आवश्यक उपाय करेगा तथा निवारक कार्यवाही कर सकेगा। धारा-18 के तहत इस अधिनियम के तहत अपराध करने वालें अभियुक्तों को जमानत नहीं होगी।

धारा-21 (1) में कहा गया हैं कि इस अधिनियम के प्रभावी ढंग ये कार्यान्वयन के लिये राज्य सरकार आवश्यक उपाय करेगी। (2) (क) के अनुसार पीड़ित व्यक्ति के लियें पर्याप्त के लियें सुविधा एवं कानूनी सहायता की व्यवस्था की गई हैं। (ख) इस अधिनियम के अधीन अपराध के जाँच पड़ताल और ट्रायल (विचारण) के दौरान गवाहों एवं पीड़ित व्यक्ति के यात्रा भत्ता और भरण-पोषण के व्यय की व्यवस्था की गई हैं। (ग) के अन्तर्गत सरकार पीड़ित व्यक्ति के लियें आर्थिक सहायता एवं सामाजिक पुनर्वास की व्यवस्था करेगी। (घ) के अनुसार ऐसे क्षेत्र का पहचान करना तथा उसके लियें समुचित उपाय करना जहाँ अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के सदस्यों पर अत्यधिक अत्याचार होते हैं। अधिनियम की धारा 21 (3) के अनुसार केन्द्र सरकार राज्य सरकार द्वारा अधिनियम से संबंधित उठायें गयें कदमों एवं कियें गयें उपायों में समन्यव के लियें आवश्यकतानुसार सहायता करेगी। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम 1995 यह नियम अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम 1989 का ही विस्तार हैं। अधिनियम के अधीन दर्ज मामलें को और अधिक प्रभावी बनानें तथा पीड़ित व्यक्ति को त्वरित न्याय एवं मुआवजा दिलाने के लियें अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण नियम 1995 पारित किया गया हैं।

धारा 5 (1) (थाना में थाना प्रभारी को सूचना संबंधी)- इसके अनुसार अधिनियम के तहत किये गयें अपराध के लियें प्रत्येंक सूचना थाना प्रभारी को दियें जानें का प्रावधान हैं। यदि सूचना मौखिक रूप से दी जाती हैं तो थाना प्रभारी उसे लिखित में दर्ज करेंगें। लिखित बयान को पढ़कर सुनायेंगें तथा उस पर पीड़ित व्यक्ति का हस्ताक्षर भी लेंगें। थाना प्रभारी मामलें को थाना के रिकार्ड में पंजीकृत कर लेगें। (2) उपनियम (1) के तहत दर्ज एफ.आई. आर. की एक प्रति पीड़ित को निःशुल्क दिया जायेगा। (3) अगर थाना प्रभारी एफ.आई. आर. लेने से इन्कार करतें हैं तो पीड़ित व्यक्ति इसे रजिस्ट्री द्वारा एस. पी. को भेज सकेगा। एस.पी. स्वंय अथवा डी. एस.पी. द्वारा मामलें की जाँच पड़ताल करा कर थाना प्रभारी को एफ.आई. आर.दर्ज करने का आदेश देंगें।

धारा-6 के अनुसार डी.एस.पी. स्तर का पुलिस अधिकारी अत्याचार के अपराध की घटना की सूचना मिलतें ही घटना स्थल का निरीक्षण करेगा तथा अत्याचार की गंभीरता और सम्पत्ति की क्षति से संबंधित रिर्पोट राज्य सरकार को सौंपेगा। धारा-7 (1)-के तहत इस अधिनियम के तहत कियें गयें अपराध की जाँच डी.एस.पी. स्तर का पुलिस अधिकारी करेगा। जाँच हेतु डी.एस.पी. की नियुक्ति राज्य सरकार/डी.जी.पी. अथवा एस.पी. करेगा। नियुक्ति के समय पुलिस अधिकारी का अनुभव, योग्यता तथा न्याय के प्रति संवेदनशीलता का ध्यान रखा जायेगा। जाँच अधिकारी (डी.एस.पी.) शीर्ष प्राथमिकता के आधार पर घटना की जाँच कर तीस दिन के भीतर जाँच रिर्पोट एस.पी.को सौपेगा। इस रिर्पोट को एस.पी.तत्काल राज्य के डी.जी.पी. को अग्रसारित करेगें। धारा-11 (1) में यह प्रावधान किया गया हैं कि मामलें की जाँच पड़ताल, ट्रायल (विचारण) एवं सुनवाई के समय पीड़ित व्यक्ति उसके गवाहों तथा परिवार के सदस्यों को जाँच स्थल अथवा न्यायालय जाने आने का खर्च दिया जायेगा। (2) जिला मजिस्ट्रेट/ एस.डी.एम. या कार्यपालक दंडाधिकारी अत्याचार से पीड़ित व्यक्ति और उसके गवाहों के लियें न्यायालय जानें अथवा जाँच अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत होने के लियें यातायात की व्यवस्था करेगा अथवा इसका लागत खर्च भुगतान करने की व्यवस्था करेगा। धारा 12 (1) में कहा गया हैं कि जिला मजिस्ट्रेंट और एस.पी. अत्याचार के घटना स्थल की दौरा करेंगें तथा अत्याचार की घटना का पूर्ण ब्यौरा भी तैयार करेंगें। (3) एस.पी. घटना के मुआवजा

करनें के बाद पीड़ित व्यक्ति को सुरक्षा प्रदान करने की व्यवस्था करेंगें तथा आवश्यकतानुसार उस क्षेत्र में पुलिस बल की नियुक्ति करेंगें। (4) के अनुसार डी.एम./एस.डी.एम. पीड़ित व्यक्ति तथा उसके परिवार के लियें तत्काल राहत राशि उपलब्ध करायेंगें साथ ही उचित मानवोचित सुविधा प्रदान करायेगें। यह अनुभव किया गया है की 'इच्छा','इरादा', 'जान-बूझकर', 'सार्वजनिक स्थल', 'के आधार पर' जैसे शब्द जो कि वर्तमान अधिनियम में दिए गए हैं वे अपराधी को बच निकलने का मौका प्रदान करते हैं। जैसे की पुलिस तुरंत मामले को दर्ज नहीं करती क्योंकि पुलिस इस बात का तर्क करती है कि वे 'इस आधार पर' ही केस दर्ज कर सकते हैं जब यह साबित हो जाए कि पीड़ित दलित आदिवासी है या नहीं। इसी प्रकार, पुलिस यह भी बहाना करती है कि यह ऐसा अपराध नहीं है जो 'इरादतन' किया गया है। ऐसे शब्दों की वजह से पीड़ित अपमानित होता है। पुलिस अधिकारी इसी आधार पर चार्जशीट फाइल नहीं करते हैं। इसी तरह पुलिस अधिकारी इस आधार पर भी चार्जशीट फाइल नहीं करते कि अपराधी ने अपराध के समय गाली नहीं दी होगी या जाति के नाम पर अपमानित नहीं किया होगा। निचली अदालतें इस तरह की व्याख्याएं करती हैं और अपराधी इस बिना पर छूट जाते हैं। यही पद्धति विभिन्न उच्च न्यायालय द्वारा अपनाई जाती है। इसी कारण 'इच्छा', 'जान-बूझकर', 'सार्वजनिक स्थल', 'के आधार पर' जैसे शब्द शब्दों के अधिनियम से हटाने का प्रस्ताव रखा गया है। वर्तमान अधिनियम की धारा 4 में यह स्पष्ट रूप से व्याख्यायित नहीं किया गया है कि जनसेवकों द्वारा 'जानबूझकर की गई लापरवाही' क्या है। पुलिस और प्रशासन के द्वारा विभिन्न स्तरों पर किए जाने वाले कर्तव्यों की अवहेलनाओं की बातें करते हैं। पुलिस विभिन्न प्रकार से अधिनियम को कमजोर करने का प्रयास करती है। जैसे की केस दर्ज न करना, कानून के अनुसार जांच में असफलता, समुचित समय में कोर्ट में चार्जशीट दाखिल ना करना, पीड़ित को राहत एवं मुआवजे की आपूर्ति न करना, न्याय प्रक्रिया में सुरक्षा एवं बचाव के उपाय न अपनाना आदि। इस तरह की अवहेलनाओं के बारे में अधिनियम में उल्लेख नहीं है। इस तरह वे इनकी खामियों की वजह से आराम से बच निकलते हैं।इस अधिनियम में 1995 में एक बार संशोधन किया गया था अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम 1995 यह नियम अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण

अधिनियम 1989 का ही विस्तार हैं। अधिनियम के अधीन दर्ज मामलें को और अधिक प्रभावी बनानें तथा पीड़ित व्यक्ति को त्वरित न्याय एवं मुआवजा दिलाने के लियें अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण नियम 1995 पारित किया गया हैं। और भविष्य में समय के अनुसार इसमें बदलाव होते रहेंगे।

संबंधित साहित्य का पुनरावलोकन

अहमदाबाद, गुजरात के सेंटर फोर सोशल जस्टिस के वालजीभाई पटेल के अध्ययन किया था जिसमें गुजरात के सोलह जिलों में 1अप्रैल 1995 के बाद प्रस्तुत अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम,1989 के तहत दर्ज 400 मुकदमों के अध्ययन में पाया कि किस तरह पुलिस की जांच लापरवाही भरी होती है। और आम तौर पर सरकारी वकील की भी काफी प्रतिकूल भूमिका होती है, जिसकी वजह से केस खारिज हो जाता है। कई बार मामूली कारणों से मुकदमा खारिज होता है।

मसलन कानूनन जांच उप पुलिस अधीक्षक या उसके ऊपर के अधिकारी करते हैं लेकिन 95 फीसद मामलों में अभियुक्त इसी आधार पर बरी हो गए क्योंकि जांच उपाधीक्षक से निचले अधिकारी ने की थी। अंतत: देश की 16 करोड़ से अधिक आबादी के आधिसंख्य वर्ग की दोयम दर्जे की स्थिति के मद्देनजर यही कहा जा सकता है कि दुनिया के सबसे बड़े जनतंत्र को वास्तविक जनतंत्र बनाने की चुनौती बनी हुई है।

शैलेंद्र कुमार,Discussion regarding situation arising out of increasing atrocities against Scheduled Castes and Scheduled Tribes in the country/19 August, 2010, अपने इस लेख में भारतीय अनुसूचित जाति एवं जनजाति खिलाफ होने वाले अत्याचारों की वर्तमान स्थिति से रूबरु कराते हैं। इसके लिए वह लोकसभा में नेताओं द्वारा दी गयी दलीलों एवं अन्य रेपोर्टों का सहारा लेते है जिसमें वह कैग (CAG) रिपोर्ट, संयुक्त राष्ट्र की विश्व सामाजिक स्थिति की रिपोर्ट का भी आधार लेते हुए एक लंबी बहस खड़ी करते हैं। जिसमें पूरे भारत में अब तक हुए अनुसूचित जाति और अनुसूचित

जनजाति के प्रति होने वाले भेदभाव, हिंसा, अत्याचार आदि का बौरावार वर्णन देते हैं। और जिससे यह पता चलता है कि भारत में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की स्थिति बहुत खराब है।

वो कहते है, कि सदियों से चलती आई परम्पराओं में शेडय़ूल्ड कास्ट्स और शेडय़ूल्ड ट्राइब्स को समाज में बराबरी का दर्जा नहीं मिला है। उन्हें अछूत माना जाता है। यह छूत-अछूत की भावना समाज को बांटती है। इस प्रकार की भावना समाज के अंदर पैदा होना, इस देश की प्रगति के हित में नहीं है। आज भारत को स्वतंत्र होके 69 साल होने के बावजूद भी एससी और एसटी को अपने अधिकार के लिए आज भी संघर्ष करना पड़ता है।

देश में दो गम्भीर समस्याएं हैं।जिसमें प्रथम पीने के पानी की समस्या है। इसके लिए गांव में पीने के पानी का प्रबंध किया गया है। लेकिन आज भी कई जगहों पर अनुसूचित जाति वहां पानी नहीं भर सकता। उसे पानी पीने का बराबरी का अधिकार नहीं है। इसके लिए संघर्ष होते हैं। इसके कारण भी एट्रोसिटीज के कई मामले हुए हैं। दूसरी समस्या मंदिरों में इनके प्रवेश को नकारा जाता है। कुछ मामले ऐसे होते हैं जिनमें महिलाओं को नग्न किया गया है, सामुदायिक रेप किया गया, पीने के पानी के मसले पर गांव में दंगे हुये। ऐसे केसेज़ 10 से 20 साल तक चलते हैं। उसके बाद भी किसी को सजा नहीं होती। मनुवादी व्यवस्था में पहले काम के आधार पर बंटवारा होता था, लेकिन धीरे-धीरे काम को जाति में परिवर्तित कर दिया गया, जाति के आधार पर आदमी का ऊंचा दर्जा माना जाने लगा, जाति के आधार पर ही उसे छोटा माना जाने लगा, जाति के आधार पर ही निरन्तर शोषण होता रहा और उसकी उपेक्षा होती रही। आजादी की लड़ाई में सभी लोग साथ थे। उसमें दलित भी शामिल थे, लेकिन उसी दौरान डॉ. बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर ने कहा कि जिस आजादी की बात आप कर रहे हैं, उस आजादी से मेरे समाज का उत्थान नहीं हो रहा है। मेरा समाज आज अंग्रेजों से उत्पीड़ित नहीं है, बल्कि जो हिन्दुस्तान का समाज है, उसी से उत्पीड़ित है और वही दबाए हुए है, उसका क्या इलाज है, इस बारे में उन्होंने उल्लेख किया। इसी वजह से 1932 में पूना पैक्ट हुआ। पूना पैक्ट किन्हीं दो या चार व्यक्तियों के बीच नहीं हुआ, बल्कि दो समाजों के बीच में हुआ था। जो दलित और डिप्रैस्ड लोग थे, उनमें और बाकी समाज के बीच में हुआ था। उसमें यह भी उल्लेख था कि जब

भी इसमें कोई परिवर्तन होगा, तो दोनों समाज के लोगों की सहमति से होगा। 24 सितम्बर,1932 में पूना पैक्ट हुआ और उसमें आरक्षण की व्यवस्था की गई, असैम्बली, पार्लियामेंट और सेवाओं में आरक्षण की व्यवस्था की गई, उसी में एजूकेशन ग्रांट की भी बात कही गई। जहां तक अनुसूचित जाति और जनजाति का सवाल है, जिस सामाजिक व्यवस्था में लोग जी रहे हैं, वह मनुस्मृति के आधार पर चल रही है। मनुस्मृति में साफ लिखा है-स्त्री शूद्रो नाध्यानताम। स्त्री चाहे किसी भी समाज की हो, अगड़े या पिछड़े वर्ग की हो, दलित वर्ग की है, उसे पढ़ने का अधिकार नहीं है और शूद्रों को जमीन-जायदाद रखने का अधिकार नहीं है। यह मनुस्मृति कहती है। इसलिए इन वर्गों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति बिगड़ने का मुख्य कारण मनुस्मृति भी रहा। इसीलिए बाबा साहेब डा. अम्बेडकर को मनुस्मृति को जलाना पड़ा था।

पुराने कानून की नई समीक्षा/सुभाष गाताडे- (जनसत्ता 7 मार्च, 2013),इस लेख में लेखक सवाल उठाते हैं कि क्या उत्पीड़ित तबके से आने वाले अधिकारियों को दलितों-आदिवासियों के साथ अत्याचार के मामले में लापरवाही दिखाने की सूरत में सजा से छूट मिलनी चाहिए? जबसे अनुसूचित तबके के अत्याचार निवारण अधिनियम में सुधार को लेकर बहस तेज हुई है, यह प्रश्न भी नए सिरे से विचारणीय हो उठा है। कार्य में लापरवाही के मद्देनजर सरकारी अधिकारी को दंडित किए जाने का प्रावधान है। 1989 में बने अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम की धारा 4 बताती है कि ऐसे अधिकारियों को छह माह की सजा हो सकती है, मगर दलित-आदिवासी तबके के अधिकारी के साथ रियायत बरती जाती है। इसके पीछे तर्क है कि उच्च जातियों के दबदबे के कारण कहीं अनुसूचित जाति के अधिकारी को शिकार न बनाया जाए।

यह स्पष्ट करने के लिए लेखक कुछ घटनाओं की तरफ ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं जिसमें से दलित आदिवासी अत्याचार की दो बड़ी घटनाओं ने, (चाहे गोहाना कांड हो या खैरलांजी कांड) यह कटु सचाई उजागर की है कि अगर जिम्मेदारी के पद पर वंचित समुदायों के व्यक्ति तैनात रहें तो भी गारंटी नहीं की अत्याचार को रोका जा सकेगा।

-2005 में दिल्ली से बमुश्किल 50 किलोमीटर दूर गोहाना में घटी दलित अत्याचार की घटना में वर्चस्वशाली जाति के कुछ लोगों ने दलितों/बाल्मीकियों के मकानों को दिनदहाड़े आग के हवाले कर दिया था। घटना के वक्त इलाके का एसीपी दलित तबके से संबद्ध था और घटना की पूर्वसूचना के चलते चौराहे पर 200 से अधिक हथियारबन्द पुलिस तैनात थी।

-2006 की खैरलांजी की घटना तो और विचलित करनेवाली है। यहां थानेदार से लेकर पुलिस अधीक्षक तक सभी पदों पर दलित तैनात थे, इसके बावजूद दलित तबके के एक परिवार की मां-बेटी के साथ सामूहिक बलात्कार तथा परिवार के दो सदस्यों की हत्या की घटना की प्रथम सूचना रिपोर्ट तक दर्ज नहीं हुई। दलित तथा अन्य जनतांत्रिक संगठनों के आंदोलन के बाद ही केस दर्ज हुआ।

धारा 4 को सर्वसमावेशी बनाने का ही मसला नहीं है, कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी की अध्यक्षता वाली नेशनल एडवायजरी काउसिंल ने अनुसूचित जाति-जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम 1989 को अधिक मजबूत करने को लेकर जो सिफारिशें पेश कीं, वह दलितों और आदिवासियों के सामाजिक बहिष्कार को लेकर है। काउंसिल ने कहा कि दलितों-आदिवासियों पर अत्याचारों की सुनवाई के लिए विशेष अदालतें गठित हो, अधिनियम में ऐसे प्रावधान बनें ताकि आरोपपत्र दाखिल होने के तीन माह के भीतर केस का निपटारा व सरकारी अधिकारियों की जिम्मेदारी तय करने के लिए सख्त कार्रवाई हो। दलितों-आदिवासियों द्वारा साझे संसाधनों के इस्तेमाल और मंदिर प्रवेश पर दबंग जातियों द्वारा रोक लगाने का विरोध, सरकारी अधिकारियों द्वारा उनके खिलाफ अत्याचार के मामलों में सुस्ती व लापरवाही बरतने आदि विभिन्न मसले भी सिफारिश में शामिल रहे। और आज नए संशोधनों के बाद इस स्थिति में बदलाव आऐ है।

पूर्व न्यायमूर्ति श्री वी के कृष्णा अय्यर की किताब 'दलित उत्पीड़न और विधिक उपचार' की प्रस्तावना के वाक्य को उद्धृत करते हुए इस नीति के बारे में वे कहते हैं कि 'ज्यादा प्रभावी, ज्यादा समग्र और ज्यादा दंडात्मक प्रावधानों वाले' अधिनियम बनाने के बावजूद 'सत्ताधारी तबकों ने इस बात को

सुनिश्चित किया कि व्यावहारिक स्तर पर ये विधेयक कागजी बाघ बने रहें।'1955 में बने 'प्रोटेक्शन ऑफ सिविल राइट्स एक्ट' की सीमाओं के मद्देनजर अत्याचार निवारण अधिनियम 1989 बना था। इसके तहत वंचित तबके के लिए विशेष अदालतों के गठन, कर्त्तव्यों में लापरवाही के लिए अधिकारियों को दंड, उत्पीड़कों की चल-अचल सम्पत्ति की कुर्की, इलाके की दबंग जातियों के हथियार जब्त करना, उत्पीड़ितों में हथियारों के वितरण और इलाका विशेष को अत्याचार प्रवण घोषित कर वहां विशेष इंतजाम करने तक कई प्रावधान शामिल थे। इनमें से ज्यादातर प्रावधान इतने सख्त हैं कि गिरफ्तारी होने पर जल्द जमानत भी नहीं हो पाती लेकिन विडम्बना है कि मूल भावना के हिसाब से इस कानून पर कभी अमल हुआ ही नहीं।

दलित अत्याचार की हर घटना के बाद 'न्यायिक जांच आयोग' बिठाने की सरकारी प्रतिक्रिया होती है लेकिन उसके बाद जमीनी स्तर पर कुछ नहीं होता। इसको स्पष्ट करने के लिए वह तमिलनाडु का उदाहरण देते हुए कहते है, कि तमिलनाडु में ऐसे कई आयोग समय समय पर बने हैं। जैसे, 1968 में जस्टिस गणपति पिल्ले आयोग, 1978 में जस्टिस सदाशिवम आयोग, 1994 में जस्टिस गोमथि नयागाम आयोग, 1999 में जस्टिस मोहन आयोग और 2011 का जस्टिस सम्पथ आयोग.दलितों-आदिवासियों को न्याय से वंचित करने में राज्य-न्यायपालिका व नागरिक समाज कैसे सांठगांठ करते हैं।

गृह मंत्रालय द्वारा 3 फरवरी 2005 को राज्य सरकारें एवं सभी केंद्रशासित प्रदेशों को लिखे गए पत्र में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम1989 को प्रभावी कार्यान्वयन करने की सलाह देते है। इस संदर्भ में वह पत्र में निम्न बिन्दु पर बात करते है-

पंचायती राज संस्थाओं और गैर-सरकारी संगठनों (एनजीओ) की भागीदारी से नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनयम, 1989 के उपबंधों के संबंध में जागरुकता फैलाने का अभियान चलाना और सेमिनार आयोजित करने को रेखांकित करते है। जिससे इस आधिनियम के बारें में लोगों में जागरूकता व जानकारी सहीसे प्राप्त हो उनकी दिशाभूल न हो।

अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) संशोधन अधिनियम, 2015

देखा जाए तो अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के लोगों के सिर और मूंछ की बालों का मुंडन कराने और इसी तरह अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लोगों के सम्मान के विरुद्ध किए गए कृत हैं। अत्याचारों में समुदाय के लोगों को जूते की माला पहनाना, उन्हें सिंचाई सुविधाओं तक जाने से रोकना या वन अधिकारों से वंचित करके रखना, मानव और पशु नरकंकाल को निपटाने और लाने-ले जाने के लिए तथा बाध्य करना, महिलाओं को देवदासी के रूप में समर्पित करना, जाति सूचक गाली देना, जादू-टोना अत्याचार को बढ़ावा देना, सामाजिक और आर्थिक बहिष्कार करना, चुनाव लड़ने में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के उम्मीदवारों को नामांकन दाखिल करने से रोकना, आदि इस तरह के अपराधों का समावेश किया गया हैं तथा उसे विविध दंड व सजा का प्रावधान किया गया हैं। मामलों को तेजी से निपटाने के लिए अत्याचार निवारण अधिनियम के अंतर्गत आने वाले अपराधों में विशेष रूप से मुकदमा चलाने के लिए विशेष अदालतें बनाना और विशेष लोक अभियोजक को निर्दिष्ट करना। और जहां तक संभव हो आरोप पत्र दाखिल करने की तिथि से दो महीने के अंदर सुनवाई पूरी करना। आदि संशोधन किए गए है, जिससे यह अधिनियम और प्रभावशाली और सफल हो।

संयुक्त राष्ट्र की विश्व सामाजिक स्थिति रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी,यह रिपोर्ट वर्ष 2010की है। इसमें भारत के बारे में कहा गया है, कि विश्व में दलितों और आदिवासियों की सबसे ज्यादा खराब स्थिति भारत में है। इसके साथ कहा गया है कि भारत में प्रति दलित83शिशु जन्म लेते ही मर जाते हैं। पांच साल होने के भीतर 1000 में से 119 बच्चों की मौत होती है। पांच साल से नीचे 50 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति और अनुसूचित जाति मर जाते हैं। उन्हें दवाएं नहीं मिलती हैं। महिलाओं की डिलीवरी अस्पताल में नहीं होती है। सामान्य आदमी को जो सुविधाएं मिलती हैं, उन्हें नहीं मिलती हैं। इसके आगे उपभोग और जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं का प्रतिशत के बारे में कहा गया है। साधारण आदमी से दलित और अनुसूचित जनजाति उपयोग के खर्च में 42 प्रतिशत पीछे है। वे अपनी जरूरतें पूरी करने के लिए गरीबी सह रहे हैं। गरीबी और अमीरी तो होती ही है लेकिन गरीबी और अमीरी में अंतर है। आज दलितों और अनुसूचित

जनजाति की स्थिति अलग है। वे गरीब हैं लेकिन अछूत है। गरीबी और अमीरी में छूत और अछूत नहीं होता है। वह गरीबी को साथ लेकर बैठता है लेकिन उन्हें बाहर रखता है। इस भावना को खत्म करने के लिए कानून बनाए गए हैं। आजादी के बाद बहुत सारे कानून बनाए गए। जिसमें प्रोटेक्शन ऑफ सिविल राइट एक्ट,1995 बनाया गया। समाज में अगर पिछड़े वर्गो पर अन्याय हो तो उनकी रक्षा करने के लिए, सहयोग करने के लिए, न्याय देने के लिए यह कानून बनाया गया। कानून के होते हुए भी इस देश में दलितों और अनुसूचित जनजाति पर अत्याचार और अन्याय हो रहे हैं। एक स्पेशल कानून द अनुसूचित जाति और द अनुसूचित जनजाति प्रिवेंटेशन ऑफ एट्रोसिटी एक्ट1989बना। एक ऐसा कानून बनाया गया कि अगर शैडय़ूल्ड कास्ट्स् और अनुसूचित जनजाति के खिलाफ कोई एट्रोसिटी होती है और वह कम्पलेंट करता है तो वह रजिस्टर होनी ही चाहिए। उनके लिए जरूरत पड़े तो स्पेशल कोर्ट और टाइम बाउंड डिसीजन होना चाहिए, यह प्रोवीजन इस एक्ट में है। लेकिन हो क्या रहा है? देश में एट्रोसिटी एक्ट के रहते केसिस रजिस्टर नहीं होते हैं। वहां के थानेदार केस रजिस्टर नहीं करते हैं। जो केसिस रजिस्टर होते हैं, उनकी क्या हालत है? अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के साथ क्या-क्या एट्रोसिटीज़ हो रही हैं मर्डर, रेप, जिंदा जलाना, दलित महिलाओं को नंगा घुमाना, जुलूस निकालना। आदि घटनाओं का तथा भारत की वास्तविकता का वर्णन इस रिपोर्ट के माध्यम से पूरे दुनिया में भारत की सामाजिक समस्या व स्थिति का असली चेहरा सामने आया। दिन प्रतिदिन इसकी अवस्था और भी खराब होते जा रही है।

श्री मंगनी लाल मंडल: एक सामाजिक स्थिति रिपोर्ट,2010 में आयी थी, जिसमें कहा गया है कि हिन्दुस्तान में जो दलित हैं, वे हाशिये पर चले गये हैं। संयुक्त राष्ट्र के आर्थिक और सामाजिक मामलों के विभाग की रिपोर्ट में यह कहा गया है कि 1981 से 2005 के बीच जो स्थिति हुई है, उसमें 20 प्रतिशत मामलों में ही लोगों को अदालत के द्वारा न्याय मिल पाता है। आज भी उनके साथ चाहे शिक्षा का मामला हो, सामाजिक न्याय का मामला हो, कुपोषण का मामला हो या सम्मानपूर्वक घोड़े पर चढ़कर शादी करने का मामला हो, इस देश में आज भी अनुसूचित जाति के लोग, जनजाति के लोग वंचित हैं। सरकार को

इसका जवाब देना होगा, गारण्टी देनी होगी। इनके लिए कानून बना देने से ही कुछ नहीं होगा, बल्कि कानून प्रभावकारी तरीके से कैसे काम करे, इसके लिए सरकार को सुनिश्चित व्यवस्था करनी होगी।

डॉ. विजय शिंदे,दलित विमर्श की कसौटी पर 'मुर्दहिया'लेख में लिखते है, कि संसार में मनुष्य का आगमन और बुद्धि नामक तत्व के आधार पर एक-दूसरे पर वर्चस्व स्थापित करने की अनावश्यक मांग सुंदर दुनिया को बेवजह नर्क बना देती है। यह कहते है की सालों-साल से एक मनुष्य मालिक और उसके जैसा ही दूसरा रूप जिसके हाथ, पैर, नाक, कान... है वह गुलाम, पीडित, दलित, कुचला। दलितों के मन में हमेशा प्रश्न उठता है कि ऐसा क्यों? पर उनके 'क्यों' को हमेशा निर्माण होने से पहले मिटा दिया जाता है। परंतु समय की चोटों से, काल की थपडों से पीडित भी अपनी पीडाओं को वाणी दे रहा है। एक की गुंज सभी सुन रहे हैं और अपना दुःख भी उसी तरीके का है कहने लगे हैं। शिक्षा से हमेशा दलितों को दूर रखा गया लेकिन समय के चलते परिस्थितियां बदली और चेतनाएं जागृत हो गई। एक, दो, तीन... से होकर शिक्षितों की कतार लंबी हो गई और अपने अधिकारों एवं हक की चेतना से आक्रोश प्रकट होने लगा। कइयों का आक्रोश हवा में दहाड़ता हुआ तो किसी का मौन। अभिव्यक्ति और प्रकटीकरण का स्वरूप अलग रहा परंतु वेदना, संघर्ष, प्रतिरोध, नकार, विद्रोह, आत्मपरीक्षण सबमें बदल-बदल कर आने लगा। ईश्वर से भेजे इंसान एक जैसे, सबके पास प्रतिभाएं एक जैसी। अनुकूल वातावरण के अभाव में दलितों की प्रतिभाएं धूल में पडी सड़ रही थी लेकिन धीरे-धीरे संघर्ष से तपकर निखरने लगी। ज्ञान का शिवधनुष्य हाथ में थाम लिया और एक-एक सीढी पर लड़खड़ाते कदम ताकत के साथ उठने लगे, अपने हक और अधिकार की ओर। एक के साथ दो और दो के साथ कई। संख्या बढ़ी और धीरे-धीरे मुख्य प्रवाह के भीतर समावेश हो रहा हैं।

डॉ. श्रीमती तारा सिंह, दलित विमर्श लेख में लिखती हैं,कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति, जाति या वर्णगत भेदभाव के कारण सदियों से स्वस्थ एवं समुन्नत सामाजिक जीवन से वंचित, तिरस्कृत और समाज के हाशिये पर उपेक्षित जीवन जीने के लिए विवश रखा गया है। बाबा साहब अंबेडकर, दलित समुदाय की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक विकलता को संबल देने,

दिल से ही नहीं, दिमाग से भी लड़े। उनके द्वारा उद्घोषित सामाजिक क्रांति, जितनी भौतिक और संघर्ष की थी, उतनी ही विचारों की भी थी। शिक्षा, समता, बंधुता, स्वंतंत्रता से दलितों की भावना को आंदोलित करने का श्रेय उन्हीं को जाता है। उन्हीं के प्रयास का फ़ल है, जो आज पहले की अपेक्षा आज स्थिति में कुछ सुधार हुए। भारत की लम्बी गुलामी का एक बड़ा कारण भारतीय समाज की रुढ़िग्रस्त,सड़ी-गली जाति व्यवस्था है।

दिव्या त्रिवेदी एक पत्रकार हैं इन्होंने दलित छात्रों पर एक अध्ययन किया है, जिसमें भारत में उच्च शैक्षिक संस्थानों में दलितों छात्रों की आत्महत्याओं को लेकर आई प्रतिक्रियाओं के अध्ययन से जातिवादी समाज की चिन्ताजनक तस्वीर सामने आई है। सिर्फ सरकार ने ही नहीं मगर कॉलेज प्रबंधन, पुलिस, स्वास्थ्य प्रणाली और उनमें जो सरकार का हिस्सा नहीं है (जैसे मीडिया और समाज) पिछले दशक में हुई 25-30 ऐसी आत्महत्याओं के प्रति भेदभावपूर्ण और समस्याजनक प्रतिक्रिया दिखाई।

आत्महत्या के फौरन बाद हालांकि कोशिश मामले को दबा देने की रहती है। फिर भी एक बार कॉलेज ये मान लेता है कि आत्महत्या हुई है, तो उसके बाद शुरू होती है मृतक के परिवारवालों की सच को सामने लाने के लिए लम्बी लड़ाई। ऐसे बहुत सारे मामले हमें देखने को मिलते हैं। तथापि शिक्षण व्यवस्था में जाति का प्रभाव शुरू से ही थी। आज़ादी के पूर्व सामाजिक आंदोलनों,महात्मा फुले, सावित्री बाई, शाहु महाराज इन्होंने इसमें बदलाव के लिए बहुत संघर्ष किया और वे उसमें बहुत हद तक सफल भी हुए, लेकिन इतने साल बाद कानून तथा आज़ादी मिलने के बाद भी इन भ्रतियों का स्थान शिक्षण व्यवस्था में दिखाई दे रहा हैं। तथा साथ ही प्रशासन व्यवस्था भी ऐसे मामलों में अपराधी रूप में देखाई दे रही हैं।

एबीपी न्यूज़ (First Published: Saturday, 6 February 2016 9:25 PM) प्रसारण के अनुसार विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) के पूर्व अध्यक्ष सुखदेव थोराट ने दलितों और मुसलमानों के शिक्षा, रोजगार एवं राजनीतिक प्रतिनिधित्व में दूसरे वर्गों' के मुकाबले पिछड़े होने का दावा करते हुए कहा कि इस पिछड़ेपन की सबसे बड़ी वजह इन दोनों समुदायों के साथ होने वाला कथित भेदभाव है।

उन्होंने कहा, ‘‘दलित और मुसलमानों की आज जो आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति है उसकी कई वजहें हो सकती हैं, लेकिन सबसे बड़ी वजह उनके साथ होने वाला भेदभाव है। यह भेदभाव हर स्तर पर देखने को मिलता है। शिक्षा और रोजगार के क्षेत्र में यह पिछड़ापन ज्यादा दिखता है।’’

पद्मश्री थोराट जी कहते है कि, ‘‘संविधान में सभी नागरिकों को समान अवसर और समान सुविधाएं मुहैया कराने का वादा किया गया है। परंतु सामाजिक स्तर पर जो विचारधारा और स्थिति है उससे दलितों एवं अल्पसंख्यकों को समान अवसर नहीं मिल पाया है। मानवीय विकास के जितने भी सूचकांक है उन सभी को आधार बनाकर देखें तो इन दोनों समुदायों की स्थिति दूसरे वर्गों’ के मुकाबले बहुत खराब है।’’

देश के उच्च शिक्षण संस्थानों में जाति एवं धर्म के नाम पर होने वाले कथित भेदभाव को दूर करने की जरूरत पर बल देते हैं। दलित छात्रों की खुदकुशी के मामले लंबे समय से सामने आते रहे हैं। एम्स जैसे संस्थानों ने भी दलित छात्र आत्महत्या करते हैं और वह इसकी असली वजह जाति के आधार पर होने वाला भेदभाव को मानते हैं।

डॉ अंबेडकर की द अनटचेबलकिताब में वह लिखते है ,“भारतीय गाँव सामाजिक समानता नहीं हैं। उसमें जातियों का समावेश हैं.” डॉ अंबेडकर ने गांवों के संदर्भ में निम्नलिखित बातों का उल्लेख किए हैं।

ग्रामीण जनसंख्या दों गुटों में विभक्त की गयी थी। एक स्पृश्य और दूसरी अस्पृश्य। स्पृश्य बहुसंख्यक थे,तो अस्पृश्य अल्पसंख्यक था। स्पृश्य लोग गांव में रहते हैं और अस्पृश्य गांव के बाहर स्वतंत्र बस्तियाँ में रहते थे। आर्थिक दृष्टि से स्पृश्य बलवान तथा समर्थशील थे, अस्पृश्य गरीब तथा परावलंबी थे। सामाजिक दृष्टि से स्पर्शों ने सत्ता की स्पर्धा में स्थान प्राप्त किए थे, तो अस्पृश्य को बंधुआ मजदूर की स्थिति में जी रहे थे।

अस्पृश्यों के अपराध (स्पृश्य के द्वारा बनाया गया)- प्रत्येक गांव में अस्पृश्यों के लिए एक संहिता बनाई गयी थी, जिसे अस्पृश्यों को पालन करना पड़ता था। ऐसे अपराध या गुनाह की सूची निम्नलिखित प्रकार से हैं, अस्पृश्यों को हिंदुओं की बस्ती से दूर स्वतंत्र बस्ती बनाकर रहना चाहिए। अस्पृश्यों द्वारा इस नियम को भंग करना अपराध हैं। अस्पृश्यों की झोपड़ियाँ दक्षिण दिशा की ओर होनी चाहिए। क्योंकि दक्षिण दिशा चारों दिशाओं में अशुभ दिशा हैं। इस नियम को तोड़ना अपराध हैं। जमीन या जानवर जैसी संपत्ति अस्पृश्य समाज के किसी भी सदस्य के द्वारा रखना अपराध हैं। अस्पृश्य व्यक्ति के लिए अच्छी छत का घर बनाना अपराध हैं। अस्पृश्य व्यक्ति के लिए साफ कपड़े पहनना, जूते ,घड़ी अथवा सोने के गहने पहनना अपराध हैं। अस्पृश्य व्यक्ति को अपने स्वयं के बच्चों का अच्छा नाम रखना भी अपराध हैं। अस्पृश्य व्यक्ति के लिए अच्छी भाषा का प्रयोग करना अपराध हैं। यद्यपि देखा जाए तो वर्तमान में यह संहिता आज भी देखाई देती हैं।

डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर , महात्मा ज्योतिबा फुले, शाहू महाराज, इन तीनों ने समाज में समानता हो, समाज में सबको बराबरी का दर्जा मिले , इसके लिए संघर्ष किया। डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर ने महाराष्ट्र में एक तालाब में पीने के पानी के लिए सत्याग्रह किया।उन सत्याग्रहियों को जब पीटा तब उस समय बाबा साहब ने कहा था कि इसलिए सत्याग्रह नहीं कर रहे हैं कि किसी को मारकर तालाब का पानी पीने को मिले। हजारों साल कुछ लोग गांव के बाहर रहते हैं, नदी के जल को पीते हैं तब भी वह जिन्दा हैं और रहेंगे लेकिन इंसान होते हुए भी किसी और को पीने के पानी का अधिकार है। जानवर को भी अधिकार है लेकिन इंसान को यह अधिकार क्यों नहीं? इसलिए इस अधिकार के लिए लढ़ाई है।

भंवर मेघवंशी,दलित अत्याचार में पिछड़े काफी अगड़े हैं इस लेख में लिखते है, कि दलितों को उत्पीड़न से बचाने के लिए तो कड़े कानून हैं। दलित विरोधी मानसिकता को काबू में करने के लिए अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति एक्ट के तहत कड़ी सजाओं का प्रावधान भी है। इसके बावजूद उत्पीड़न के मामलों में वृद्धि हो रही है। दलितों का असहाय चेहरा जब तब सामने आता रहता है। रविदास जयंती मना रहे दलितों के साथ मध्य प्रदेश के दमोह में मारपीट का मामला हो या हरियाणा के फरीदाबाद में

पंचायत चुनाव में वोट न देने पर दलितों की पिटाई का, दबंगों ने कानून की धज्जियां उड़ाते हुए दलितों पर अत्याचार किया। उत्तर प्रदेश के आगरा जिले में एक दलित परिवार की सिर्फ इसलिए पिटाई कर दी गयी क्योंकि उनमें से एक का हाथ भूलवश एक ब्राह्मण को छू गया था। इस परिवार में एक महिला गर्भवती भी थी। दो दिन पहले यूपी के कन्नौज में रेप के बाद एक दलित महिला को एसिड से नहला दिया गया। सबसे ताजा मामला राजस्थान के चित्तौड़गढ़ से सामने आया है जहां बाइक चोरी के आरोप में दलित बच्चों को नंगा करके पीटा गया। पूर्व केंद्रीय मंत्री सचिन पायलेट का कहना है कि दलितों पर अत्याचार के इस तरह के मामले लगातार सामने आ रहे हैं लेकिन सरकार इन्हें रोकने के पर्याप्त प्रयास नहीं कर रही है। देश में जातिगत भेदभाव की जड़ें बहुत गहरी हैं। सबसे अधिक प्रभावित दलित एवं कमजोर वर्ग है जो भेदभाव और तरह तरह के उत्पीड़न का शिकार है। किसी दलित के खाना बनाने से खाने को अपवित्र मानने वाले लोग भी मौजूद हैं। इस तरह यह वास्तविकता को बया करते हुए इसका दोष समाज और शासन को देते हैं।

आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन 21 वीं सदी में भारत,इस किताबमेंजे.पी.सिंहकहते है,सामाजिक गतिशीलता जाति-व्यवस्था में संभव नहीं है; लेकिन वर्ग-व्यवस्था में स्थिति परिवर्तन संभव है। डी. एन. मजुमदार (1958) ने इस संदर्भ में जाति को बंद वर्ग में माना है। एम. एन. श्रीनिवास ने इस विचार को स्वीकार नहीं किया है। उनका कहना है (M.N.Srinivas,1962;42) कि गतिशीलता केवल संस्कृतीकरण और पश्चिमीकरण कि प्रकीयाओं से ही संभव है। आन्द्रे बेते (1965) का कहना है कि कोई सामाजिक व्यवस्था पूर्णरूपेण बंद नहीं होती। वैकल्पिक समन्वय के लिए थोड़ा ही भले हो,लेकिन विस्तार कि गुंजाइश होती है।

जैसा कि समाज और उसकी संस्कृति में हमेशा परिवर्तन होता रहा है। प्रत्येक समाज में चाहे-अनचाहे वह प्रक्रिया अबाध गति से चलती रहती है। विश्व में ऐसा कोई भी समाज नहीं है, जो परिवर्तन से अछूता है। चूँकि परिवर्तन समाज का शाश्वत नियम है। तथापि सामाजिक परिवर्तन कि प्रक्रिया कई रूपों में प्रकट होती है, जैसे उद्विकास, प्रगति, विकास, सामाजिक आंदोलन, क्रांति,आदि। इन सामाजिक प्रकियाओं का सामाजिक परिवर्तन से सीधा संबंध है। या कभी-कभी इन संबंधों को सामाजिक परिवर्तन का

पर्यायवाची माना जाता है। जैसा की बहुत सारी समस्याओं का समाधान, सामाजिक बदलाव तथा सुधार इन्हीं आंदोलनों, क्रांति, संविधान आदि के कारण हुए हैं। और यह उम्मीद भी कर सकते है, कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति पर जो आज अत्याचार हो रहे है इनमें बदलाव लाये जा सकते है, बदलाव हुए है और हो रहे हैं। समाज में भाईचारा कि भावना को बढ़ाना तथा जागरूकता ला के एक शांतिपूर्ण भारतीय समाज व्यवस्था का निर्माण किया जा सकता हैं।

Being दलित,मेंAtrocities on Dalits, attack on Dalits in Maharashtra, crime against Dalitsलेख का कुछ अंश, जिन्होंने महाराष्ट्र में घटित अपराधों तथा वास्तविकता को उजागर किया है, महाराष्ट्र में जाति आधारित हिंसाओं के मामलो में वृद्धि हुई हैं। साल 2014 में दलितों के खिलाफ हिंसाओं में 7 लोगो की हत्या इस लिए कर दी गई की वे निचली जाति से थे। इन सभी मामलो में हत्या निर्ममता पूर्वक तथा विना किसी संवेदना के की गयी। इन सब के बाबजूद भी महाराष्ट्र अपने आप को उन्नंत राज्य मानता हैं। इन मामलों में से कुछ केवल को ही अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम के तहत दर्ज़ किया गया है। हालांकि उन सभी मामलो में जाति आधारित हिंसा के पर्याप्त सबूत थे। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) के आकड़ो के विश्लेषण से महाराष्ट्र में 2001-2012 के बीच अनुसूचित जातियों के खिलाफ अत्याचार निवारण अधिनियम के तहत अपराधों एवं अत्याचार के 3,210 मामलों की रिपोर्ट की थी। महाराष्ट्र में वार्षिक सजा की दर 3 फीसदी से भी कम है और इस लिए महाराष्ट्र में बढ़ रहे जातिगत अपराधो के लिए राज्य को जिम्मेदार मानते हैं।

यहां लेखक,साल 2014 में कुछ प्रसिद्ध हत्याओं, दलितों के खिलाफ घातक अपराधों में से कुछ मामलों को बताते हैं।

1)3 अप्रैल 2014 को जालना जिले में, एक पूर्व सरपंच गणेश चव्हाण ने एक दलित मनोज कसाब पर हमला कर दिया। हमले की वजह यह थी की मनोज कसाब आरक्षण की वजह से गाँव का सरपंच बन गया था जो गणेश चव्हाण को पसंद नहीं आया। उसे लग रहा था के वो एक दलित को किस तरह से अपना

सरपंच मान सकता हैं। कसाब के हमलावर एक मराठा था।चव्हाण और 10 अन्य लोगों के खिलाफ अत्याचार निवारण अधिनियम के तहत मामला दर्ज किया गया हैं।

2) 25 अप्रैल 2014 को औरंगाबाद जिले के एक गांव में उमेश आगले को चाकू घोप कर मौत मौत के घाट उत्तर दिया गया था। उस पर एक ऊंची जाति की लड़की के साथ चक्कर होने का संदेह था। तीन मराठा जाति के लोग उसे बात करने के बहाने उसके घर से बाहर ले गए और उस की हत्या कर के उस के मृत सरीर को एक कुए में फेंक दिया। सुरु में इसे जाति आधारित हिंसा मानने से पुलिस मना करती रही लेकिन जब मामला मीडिया में उछलने लगा तो इससे जाती हिंसा मान कर मामला दर्ज़ किया गया और तीन लोगो को गिरफ्तार किया गया।

3) तीन दिन बाद 28 अप्रैल को अहमदनगर जिले में एक दलित किशोर को मौत के घाट उतार दिया गया तथा उसके शरीर को एक पेड़ से लटका दिया गया था। हत्या का कारण था उसका एक मराठा लड़की से बात करना। नितिन आघे को लड़की का भाई और एक अन्य आदमी ने उसके स्कूल से उठाया, उसकी खूब पिटाई की और गाला दबाके उस की हत्या कर दी। प्रारम्भिक जाँच तो इसे हत्या का केश भी मानने से इंकार करती रही, जातिगत हत्या की बात तो दूर की बात हैं। लेकिन बाद में इसे बदला गया और मामला अत्याचार निवारण अधिनियम के तहत दर्ज किया गया।

4) 1 मई 2014 को पुणे जिले में माणिक उदागे की हत्या सिर्फ इस लिए करदी क्योंकि उसने अपने गांव में अंबेडकर जयंती मानाने की योजना बनाई थी। कुछ मराठा लोगो को इस समारोह पर आपत्ति थी।उसे अपने ही गांव में चारमराठा श्रेणी के पुरुषों द्वारा एक पत्थर खदान में कुचल कर मौत के घाट उतार दिया। इस मामले को अत्याचार निवारण अधिनियम के तहत दर्ज करने में पुलिस को एक साल लग गए।

5) एक पखवाड़े बाद 16 मई को एक दलित कार्यकर्ता संजय खोबरागाड़े को गोंदिया जिले में आग से जला कर मार दिया। बह एक ऊँची जाती द्वारा बुद्धा विहार के लिए आवंटित भूमि को गैर क़ानूनी तरीके से

हतियाने का विरोध कर रहे था। 90 फीसदी जलने के बावजूद खोबरागाड़े मरते हुए पुलिस को अपना बयान देने में कामयाब रहे जिससे एक पवार परिवार के छह लोगों को गिरफ्तार किया गया।

6) 21 अक्टूबर 2014 को अहमदनगर जिले में एक जातीय हिंसा में एक परिवार के तीन सदस्यों को निर्ममता पूर्वक मार दिया गया। संजय जाधव, उसकी पत्नी जयश्री और उनके बेटे सुनील की सुबह के शुरुआती घंटों में हत्या कर दी गई। तीनो के क्षत-विक्षत शव एक खेत में चारों ओर बिखरे पाए गए। महिला के सिर पर गहरी चोट के निशान थे। इस हिंसा का कारण सुनील और एक ऊंची जाति की लड़की के बीच कथित प्रेम संबंध को जिम्मेदार ठहराया गया। कोई तत्काल गिरफ्तारी नहीं की गयी बल्कि जिस व्यक्ति ने प्रथम सूचना रिपोर्ट (एफआईआर) दर्ज की थी उसी को गिरफ्तार किया गया। वह मृतक आदमी का भतीजा था। पुलिस के अनुसार अपराध का कारण परिवार का आंतरिक विवाद था। मामले को पारिवारिक विवाद बना कर अपराध निवारण अधिनियम के दायरे से बाहर कर दिया गया। प्रारंभिक दावे के बाद सुनील और ऊंची जाति की लड़की के बीच संबंध के बारे में इससे अधिक कुछ नहीं सुनने को मिला।

7) 1 जनवरी 2013 को अहमदनगर जिले में सफाई कर्मचारी (क्लीनर) के रूप में काम करने वाले तीन दलित पुरुषों की हत्या कर दी गयी। 1 जनवरी की सुबह संदीप धनवार, सचिन धारु और राहुल कंडारे को सेप्टिक टैंक साफ करने क लिए प्रकाश दरांडाले (एक मराठा) ने अपने घर बुलाया। शाम को 8 बजे धनवार के एक रिश्तेदार ने पुलिस को फ़ोन किया के वह सेप्टिक टैंक में डूब गया हैं। दो अन्य लोगों जो उस के साथ गए थे उन की लाश भी पास के एक कुए में पड़ी हुई मिली। दोनों के शव कटे-फटे, सिर और शरीर से कटे अंगों के साथ थे जो उनपर किया गए अत्याचार और बर्बरता को दर्शाता हैं। इस मामले में अत्याचार निवारण अधिनियम के तहत मामले दर्ज किए गए थे और पुलिस इसकी वजह एक दलित और ऊंची जाति की लड़की के बीच प्रेम प्रसंग से संबंधित बता रही हैं।

उनका कहना है, कि यह तो वे मामले हैं जिन के बारे में केस दर्ज़ किया गया हैं। ऐसे ही काफी मामले जो मीडिया में नहीं आ पाते दबा दिए जाते हैं तथा केस को रफा-दफा कर दिया जाता हैं। हमारी न्याय

प्रणाली तथा नौकरशाही पर ऊँची जातियों का एकाधिकार दलितों को न्याय मिलने में बाधक साबित होता हैं। साथ ही खराब जाँच एवं कानून प्रक्रिया में खामियों की वजह से दलितों पर होने वाले अपराधों में न्याय मिलने की संभावना कम ही होती हैं। लगभग सभी मामलों में आरोपी दलितों के ऊपर गलत केस भी दायर कर देते हैं जिससेगरीब दलित और परिवार को उनके मूल मामला वापस लेने के लिए मजबूर किया जाता है। विशेष न्यायालय में भी अधिकारियों एवं आरोपियों के बीच सांठगांठ होती है। पुलिस भी समय पर आरोप पत्र दाखिल नहीं करती हैं।अत्याचार निवारण अधिनियम दलितों को अत्याचारों से बचाने के लिए मज़बूत हथियार हैं लेकिन न्याय प्रक्रिया में तेज़ी लाने की ज़रूरत हैं। न्याय के संवैधानिक और कानूनी उपचार दलितों के लिए मौजूद हैं पर उनके क्रियान्वयन सुस्त है। कई लोगों के लिए यह कोई कानून न होने की तरह है।

ओपी सोनिक,जातीयउत्पीड़न परंपरा के बीजइस लेख में लिखते है, जातीय भेदभाव को खत्म करके आगे बढ़ने से ही देश और समाज का विकास होगा। हमारे देश को आजाद हुए छह दशक से ज्यादा समय हो गया है परंतु आज भी जातीय भेदभाव खत्म नहीं हो पाया है। वे कहते है, आजादी के नाम पर राजनीतिक लोकतंत्र का ढ़ांचा तो खड़ा कर लिया है, पर बड़ा सवाल है कि उसमें सामाजिक लोकतंत्र की प्राण-प्रतिष्ठा कब स्थापित होगी। यहां यह साफ होना जरूरी है।

दलितों के मामले में गैरबराबरी की मानसिकता से सरकारी के साथ सामाजिक तौर पर भी लड़ने की दरकार है। कानून और व्यवस्था की चुस्ती के साथ अगर सामाजिक जागरूकता नहीं आएगी तो कदापि ऐसे समय और समाज की कल्पना नहीं कर सकते, जहां सभी वर्ग, जाति और जमात के लोग एक साथ एक पंत में खड़े हो सके।

दलितों से छुआछूत का मामला हो या मंदिर में प्रवेश को लेकर टकराहट या उनसे व्यभिचार की घटनाएं- लगभग हर रोज देश के किसी न किसी कोने से देखने-सुनने को मिल जाती हैं। देश में इस तरह की घटनाओं पर नियंत्रण पाने के लिए बहुत सख्त कानून मौजूद हैं। 'दलित एक्ट' के तहत सजा के कठोर

प्रावधान किए गए हैं। दलित उत्पीड़न के संदर्भ कुछ हद तक नियंत्रण तो लाया है लेकिन उन्हें उचित ढंग से लागू किया जाए तो उसके भय से ही बहुत हद तक ऐसी घटनाओं पर नियंत्रण पाया जा सकेगा।

समाज कार्य के क्षेत्र में प्रस्तावित शोध का योगदान:

प्रस्तुत शोध कार्य सामाजिक विज्ञान के अलग-अलग संकायों में अलग-अलग प्रविधियों से हुआ है। इस तरह के शोध कार्य ज़्यादातर समाजशास्त्र में हुए है। समाज कार्य एक ऐसा विषय है जो लोगों को अपनी समस्याओं को हल करने के लिए प्रोत्साहित करता है अतः इस शोध कार्य के द्वारा हस्तक्षेप करते हुए संबन्धित उत्तरदाताओं को अपनी समस्याओं का समाधान करने के लिए प्रोत्साहित कर सकते हैं। साथ ही अलग-अलग अनुशासनों की प्रविधियों का भी इस्तेमाल किया गया है जिससे सामाजिक कार्य ज्ञान में वृद्धि होगी।